हिन्दी साहित्य का इतिहास: आदिकाल से रीतिकाल तक

MASTER OF ARTS HINDI LANGUAGE AND LITERATURE

M23HD01DC

Self
Learning
Material

SREENARAYANAGURU
OPEN UNIVERSITY

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

The State University for Education, Training and Research in Blended Format, Kerala

Vision

To increase access of potential learners of all categories to higher education, research and training, and ensure equity through delivery of high quality processes and outcomes fostering inclusive educational empowerment for social advancement.

Mission

To be benchmarked as a model for conservation and dissemination of knowledge and skill on blended and virtual mode in education, training and research for normal, continuing, and adult learners.

Pathway

Access and Quality define Equity.

हिन्दी साहित्य का इतिहासः आदिकाल से रीतिकाल तक

Course Code: M23HD01DC

Semester-I

Discipline Core Course
MA Hindi Language and Literature
Self Learning Material

വിദ്യകൊണ്ട് സ്വതന്ത്രരാവുക

SREENARAYANAGURU
OPEN UNIVERSITY

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

The State University for Education, Training and Research in Blended Format, Kerala

Documentation

M23HD01DC

हिन्दी साहित्य का इतिहास: आदिकाल से रीतिकाल तक

Semester I

SREENARAYANAGURU
OPEN UNIVERSITY

All rights reserved. No part of this work may be reproduced in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from Sreenarayanaguru Open University. Printed and published on behalf of Sreenarayanaguru Open University by Registrar, SGOU, Kollam.

www.sgou.ac.in

YouTube

ISBN 978-81-966843-3-4

9 788196 684334

Academic Committee

Dr. Jayachandran R. (Chair)

Dr. P.G Sasikala
Dr. Pramod Kovapurath
Dr. R. Sethunath
Dr. Jayakrishnan J.
Dr. B Ashok
Dr. Vijayakumar B.

Development of the content

Dr. Karthika. M. S.

Review

Content : Dr. Sunil Kumar S.
Format : Dr. I.G. Shibi
Linguistics : Dr. Reshma P.P.

Edit

Dr. Sunil Kumar S.

Scrutiny

Dr. Sophia Rajan, Dr. Karthika M.S., Dr. Indu G. Das, Dr. Sudha T., Krishnapreethi A.R.

Co-ordination

Dr. I.G. Shibi and Team SLM

Design Control

Azeem Babu T.A.

Production

October 2023

Copyright

© Sreenarayanaguru Open University 2023

Message from Vice Chancellor

Dear,

I greet all of you with deep delight and great excitement. I welcome you to the Sreenarayanaguru Open University.

Sreenarayanaguru Open University was established in September 2020 as a state initiative for fostering higher education in open and distance mode. We shaped our dreams through a pathway defined by a dictum 'access and quality define equity'. It provides all reasons to us for the celebration of quality in the process of education. I am overwhelmed to let you know that we have resolved not to become ourselves a reason or cause a reason for the dissemination of inferior education. It sets the pace as well as the destination. The name of the University centers around the aura of Sreenarayanaguru, the great renaissance thinker of modern India. His name is a reminder for us to ensure quality in the delivery of all academic endeavors.

Sreenarayanaguru Open University rests on the practical framework of the popularly known "blended format". Learner on distance mode obviously has limitations in getting exposed to the full potential of classroom learning experience. Our pedagogical basket has three entities viz Self Learning Material, Classroom Counselling and Virtual modes. This combination is expected to provide high voltage in learning as well as teaching experiences. Care has been taken to ensure quality endeavours across all the entities.

The university is committed to provide you stimulating learning experience. The post graduate programme in Hindi has a unique blend of language and literature. The focus of the programme is on enhancing the capabilities of the learners to undergo a deeper comprehension of the sociology of the forms in literature although the required credits are in place to learn other aspects of Hindi literature. Care has been taken to expose the students to recent trends in Hindi literature. We assure you that the university student support services will closely stay with you for the redressal of your grievances during your studentship.

Feel free to write to us about anything that you feel relevant regarding the academic programme.

Wish you the best.

Regards,

Dr. P.M. Mubarak Pasha 01.10.2023

Contents

BLOCK-01 हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्शन........ 01

इकाई : 1 हिन्दी साहित्येतिहास की परंपरा 02

इकाई : 2 हिन्दी साहित्येतिहास के आधार........ 10

इकाई : 3 हिन्दी साहित्य का काल विभाजन........ 16

इकाई : 4 काल विभाजन और नामकरण की समस्या........ 22

BLOCK-02 आदिकाल........ 27

इकाई : 1 आदिकाल-सीमांकन, आदिकाल की परिस्थितियाँ, आदिकालीन साहित्य की विशेषताएँ........ 28

इकाई : 2 आदिकाल-नामकरण की समस्या, प्रामाणिकता की समस्या........ 37

इकाई : 3 अपभ्रंश साहित्यः प्रमुख कवि, जैन साहित्य, सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य........ 43

इकाई : 4 रासो काव्य परंपरा, प्रमुख प्रवृत्तियाँ -प्रमुख कवि (चंदबरदाई, जगनिक, अमीर खुसरो, विद्यापति) लौकिक साहित्य, गद्य रचनाएँ........ 47

BLOCK-03 भक्तिकाल........ 56

इकाई : 1 भक्तिकाल-सीमांकन, भक्तिकालीन साहित्य की विशेषताएँ........ 57

इकाई : 2 भक्तिकाल-राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक परिवेश........ 62

इकाई : 3 भक्ति आन्दोलन-निर्गुण भक्ति काव्य, सगुण भक्ति काव्य........ 67

इकाई : 4 सन्त काव्य, प्रेमाख्यान काव्य, रामभक्ति काव्य, कृष्णभक्ति काव्य........ 75

BLOCK-04 रीतिकाल........ 87

इकाई : 1 रीतिकाल-सीमांकन, नामकरण........ 88

इकाई : 2 रीतिकाल- राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियाँ........ 92

इकाई : 3 रीति शब्द की व्याख्या, रीतिकाव्य का लक्षण, रीतिकाव्य की मूल प्रवृत्तियाँ........ 97

इकाई : 4 रीतिकवियों के वर्ग- रीतिसिद्ध, रीतिबद्ध, रीतिमुक्त........ 102

हिन्दी साहित्य का इतिहास दर्शन

BLOCK-01

Block Content

Unit 1: हिन्दी साहित्येतिहास की परंपरा

Unit 2: हिन्दी साहित्येतिहास के आधार

Unit 3: हिन्दी साहित्य का काल-विभाजन

Unit 4: काल-विभाजन और नामकरण की समस्या

इकाई : 1

हिन्दी साहित्येतिहास की परंपरा

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- हिन्दी साहित्येतिहास की परंपरा से अवगत होता है
- हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों से परिचय प्राप्त करता है
- प्रमुख साहित्येतिहास ग्रंथों से परिचय प्राप्त करता है

Background / पृष्ठभूमि

सामान्यतः इतिहास शब्द से राजनीतिक व सांसकृतिक इतिहास का ही बोध होता है। किंतु वास्तविकता यह है कि इस सृष्टि की कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जिसका इतिहास से संबंध न हो। अतः साहित्य भी इतिहास से असंबद्ध नहीं है। जब 'इतिहास' शब्द के साथ 'साहित्य' शब्द जुडता है तब वह 'साहित्येतिहास' बन जाता है। जहाँ इतिहास में मानव और उससे जुडी घटनाओं की विकासात्मक व्याख्या को, तर्कसम्मत और तथ्यात्मक रूप से प्रस्तुत किया जाता है, वहाँ साहित्येतिहास में मानव सृजनात्मक कर्म, उससे संबंधित पूर्व-परंपरा, युगीन परिवेश आदि पर प्रकाश डाला जाता है। दूसरे श्ब्दों में, साहित्यिक रचनाएँ साहित्यकारों की सर्जनात्मक क्रियाओं और प्रवृत्तियों की सूचक होती है। अतः उनके इतिहास को समझने के लिए उनके रचयिताओं तथा उनसे संबंधित स्थितियों, परिस्थितियों और परंपराओं को समझना भी आवश्यक होता है। प्रारंभ में साहित्य के इतिहास में भी रचनाओं व रचयिताओं का स्थूल परिचय ही पर्याप्त होता था। किंतु ज्यों-ज्यों इतिहास के सामान्य दृष्टिकोण का विकास होता गया त्यों-त्यों साहित्येतिहास के दृष्टिकोण में भी तथानुसार सूक्ष्मता व गंभीरता आती गयी।

Keywords / मुख्य बिन्दु

इतिहासबोध, त्रयंबक तत्व, ऐतिहासिक चेतना, कालक्रमिकता

Discussion / चर्चा

किसी भी साहित्येतिहास दर्शन में इतिहास के संबंध में प्रयुक्त और व्यवहृत विभिन्न दृष्टि कोणों, धारणाओं एवं विचारों का अध्ययन किया जाता है। इतिहास संबंधी इन्हीं विचारों या धारणाओं को समूचे रूप में इतिहास दर्शन कहते हैं। साहित्य के मूल में परिवर्तित सामूहिक चित्तवृत्तियों को आधार बनाकर साहित्य की परंपरा का व्यवस्थित अनुशीलन ही साहित्य का

इतिहास कहलाता है। साहित्येतिहास लिखने के पूर्वसूत्र भक्तिकाल की रचनाओं, 'चौरासी वैष्णव की वार्ता' 'दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता' और 'भक्तमाल' आदि में मिल जाते हैं जहाँ हिन्दी के विभिन्न कवियों के जीवनवृत्त एवं उनकी रचनाओं का परिचय मिलता है। किंतु इनमें प्रामाणिकता का अभाव है। प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संक्षिप्त प्रतिबिंब होता है। जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है। इस दृष्टि से देखा जाए तो हिन्दी साहित्य के इतिहास की एक लम्बी परंपरा है और उस पर हमें विस्तारपूर्वक विचार करना ज़रूरी है।

1.1.1 हिन्दी साहित्य की उत्पत्ति

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन का सबसे पहला प्रयास एक फ्रेंच विद्वान गार्सा-द-तासी ने किया। यह एक कौतूहलपूर्ण बात है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन का प्रयास सर्वप्रथम एक विदेशी ने 1839 में किया। गार्सा-द-तासी का यह प्रयास अपना एक अलग महत्व रखता है। हालाँकि उस ग्रंथ को पूर्ण रूप से हिन्दी साहित्य के इतिहास का आधार ग्रंथ नहीं माना जा सकता। फिर भी प्रथम प्रयास के रूप में यह ग्रंथ विशिष्ट स्थान रखता है। इस ग्रन्थ का महत्व केवल इसी दृष्टि से है कि इसमें हिन्दी काव्य का सर्वप्रथम इतिहास प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है तथा कवियों के रचना काल का भी निर्देश किया गया है।

- 1839 - 'इस्तवार द ला लितरेत्युर ऐन्दुई ऍंदुस्तानी' - गार्सा द तासी

गार्सा-द-तासी

गार्सा-द-तासी के 1839 के प्रथम प्रयास के बाद एक अन्य विद्वान जिन्होंने इस क्षेत्र में कदम रखा वे थे शिवसिंह सेंगर। उनका हिन्दी साहित्य का इतिहास कुछ अलग विशेषताएें लिए हुए था। शिवसिंह सेंगर ने 1883 में 'शिवसिंह सरोज' नामक ग्रंथ प्रकाशित किया जिसमें कवियों का जीवन चरित्र एवं उनकी कविताओं को उदाहरण सहित प्रस्तुत किया गया है। शिवसिंह सेंगर का जन्म 1833 ई. में उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के कांथा नामक गांव में एक ज़मींदार परिवार में हुआ था। शिवसिंह सेंगर पेशे से पुलिस इंस्पेक्टर थे, फिर भी संस्कृत, फ़ारसी और हिन्दी कविता के अध्ययन में उनकी गहरी रूचि थी और वे स्वयं भी कवि थे। उन्होंने 'ब्रह्मोत्तर खंड' और 'शिव पुराण' का हिन्दी में अनुवाद किया। सेंगर जी की सबसे अधिक ख्याति 'शिवसिंह सरोज' नामक संग्रह ग्रंथ की रचना के कारण है। इस ग्रंथ में हिन्दी के लगभग एक हज़ार कवियों के जीवन और काव्य का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। ग्रंथ का प्रकाशन समय 1877 से 1883 ई. के बीच माना जाता है। एक अलग तरह की प्रथम रचना होने के कारण इसमें कवियों के जीवन काल आदि की कुछ विसंगतियां बताई जाती हैं। साहित्य के इतिहास में कवियों के जीवन चरित्र पर प्रकाश डालने का शिवसिंह सरोज का प्रयास अपने आप में

> ▶ शिवसिंह संगर द्वारा 1883 में 'शिवसिंह सरोज' प्रकाशित

प्रशंसनीय रहा क्योंकि उस शताब्दी में यह करना आसान कार्य न रहा होगा । प्रेस उन दिनों मुमकिन न रहा होगा ऊपर से जनसंचार माध्यमों की कमी भी रही और उस पर कवियों के जीवन चरित्र हासिल करना वाकई मुश्किल रहा होगा ।

किंतु साहित्येतिहास-लेखन की दृष्टि से इस ग्रंथ में कई कमियाँ दिखाई देती हैं जिनमें मुख्य निम्नलिखित हैं:

- प्रधानतः यह ग्रंथ कविवृत्त-संग्रह है, न कि इतिहास। कई विद्वान तो इसे कविवृत्तसंग्रह भी नहीं मानते।
- इस ग्रंथ में कई रचनाकारों से संबंधित तथ्य प्रामाणिक नहीं हैं। काव्यसंग्रह की पूर्व परंपरा का उन पर अधिक प्रभाव है और कवियों से संबंधित ऐतिहासिक तथ्यों के संग्रहण और परीक्षण पर उन्होंने कम ध्यान दिया है।
- कवियों के जन्मकाल, जन्मस्थान आदि से संबंधित जानकारियाँ अत्यन्त संक्षिप्त और बहुधा अनुमानित हैं। कई स्थलों पर उनकी ऐतिहासिक चेतना पर किवदंतियाँ और धार्मिक विश्वास हावी हो गए हैं।
- इसमें आकारादि का क्रम अपनाया है न कि कालक्रमिकता का जो इतिहास-लेखन की अनिवार्य शर्त है।

कुल मिलाकर इस ग्रंथ में इतिहासबोध का अभाव इसकी बड़ी सीमा है। किन्तु, इन सीमाओं के बावजूद भी 'शिवसिंह सरोज' का हिन्दी साहित्येतिहास-लेखन परंपरा में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस महत्व का एक प्रमुख कारण तो इसकी प्राचीनता है और दूसरा परिमाण। इस ग्रंथ में लगभग एक हज़ार कवियों का वर्णन है। महत्व का एक कारण यह भी है कि भले ही ऐतिहासिक-लेखन की कसौटियों पर यह ग्रंथ खरा न उतरता हो, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि अपनाने का प्रयत्न 'शिवसिंह सरोज' में दिखाई पड़ता है। वे हिन्दी के पहले विद्वान हैं जिन्होंने हिन्दी साहित्य में परंपरा की निरन्तरता की ओर संकेत किया है।

> ▶ 'शिवसिंह सरोज' में लगभग एक हजार कवियों का वर्णन है

शिवसिंह संगर के 'शिवसिंह सरोज' के बाद इस क्षेत्र में कदम रखा जॉर्ज ग्रियर्सन ने। जॉर्ज ग्रियर्सन के ग्रंथ ने हिन्दी साहित्य के इतिहास को नई दिशा दी। 1886 ई. में 'मॉडर्न वर्नाकुलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान' नामक इतिहास ग्रंथ जॉर्ज ग्रियर्सन द्वारा प्रकाशित किया गया। यह हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन का तीसरा प्रयास था। जॉर्ज ग्रियर्सन द्वारा रचित 'मॉडर्न वर्नाकुलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान' को एशियाटिक सोसैटी ऑफ बंगाल ने पत्रिका विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया। अंग्रेजी भाषा में रचित इस ग्रंथ को डॉ. किशोरी लाल गुप्त ने 'हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास' शीर्षक से हिन्दी में रूपांतरित किया। इसमें प्रथम बार हिन्दी साहित्य को काल विभाजित करने का प्रयास किया गया। इसमें हिन्दी साहित्य के काल को दस अध्यायों में बांटा गया। इसमें लेखक ने कवियों एवं लेखकों का कालक्रमानुसार वर्गीकरण करते हुए उनकी प्रवृत्तियों को स्पष्ट किया है। हिन्दी भाषा उसके साहित्य के स्वरूप एवं विकास का परिचय भी इसमें दिया है। साहित्यिक ग्रंथों को कालखंडों में विभक्त कर उसे चारण काव्य, धार्मिक काव्य, प्रेम काव्य, दरबारी काव्य आदि कोटियों में निर्धारित करने का श्रेय इसी को जाता है। भक्तिकाल को 'स्वर्णयुग' की संज्ञा भी सर्वप्रथम ग्रियर्सन ने ही दी।

> ▶ जॉर्ज ग्रियर्सन - 'मॉडर्न वर्नाकुलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान'

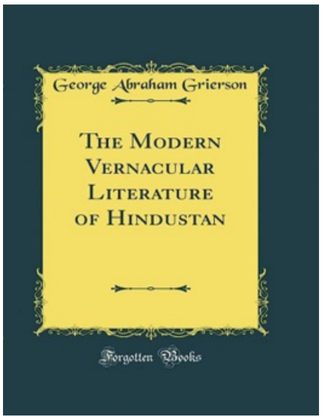

1886 में **जॉर्ज ग्रियर्सन** द्वारा '**द मॉडर्न वर्नाकुलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान**' प्रकाशित।

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में अगल महत्वपूर्ण कदम 'मिश्रबंधु विनोद' के प्रकाशन से हुआ। 'मिश्रबंधु विनोद' एक व्यक्ति का प्रयास नहीं वरन् तीन व्यक्तियों का प्रयास है- गणेशबिहारी मिश्र, शुकदेवबिहारी मिश्र तथा श्यामबिहारी मिश्र। ये तीनों भाई थे और इन भाइयों ने 'मिश्रबंधु' के संयुक्त नाम से हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में क़दम रखा और फिर पीछे मुड़कर नहीं देखा। इन तीनों का मिला जुला प्रयास हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में सराहनीय प्रयास रहा। 'मिश्रबंधु विनोद' की रचना चार भागों में किया गया था। इसके तीन भाग सन् 1913 ई में तथा चतुर्थ भाग 1934 ई में प्रकाशित हुआ। 'मिश्रबंधु विनोद' में लगभग पाँच हज़ार कवियों को स्थान दिया और आठ से अधिक काल खण्डों में विभक्त किया गया। इसमें कविताओं के साथ- साथ कवियों का साहित्य के विविध अंगों पर प्रकाश डालने की नई पद्धति अपनाई गई जो अपने आप में सराहनीय काम था क्योंकि उस शताब्दी में साहित्य के विविध रूपों पर विस्तृत अध्ययन का अभाव रहा। इतिहास के रूप में इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि इसमें कवियों के विवरणों के साथ-साथ साहित्य के विविध अंगों पर प्रकाश डाला गया है। काव्य, आलोचना और संपादन के त्रयंबक तत्वों से निर्मित मिश्रबंधुओं का साहित्यिक योगदान हिन्दी भाषा की महत्त्वपूर्ण धरोहर है। हिन्दी जगत को जैन कवियों की बाबत आरंभिक जानकारी भी मिश्रबंधु ने ही दी। इन्होंने नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के द्वारा हस्तलिखित ग्रंथों की खोज करके उन्हें इकट्ठा किया। अपनी बहुआयामी सृजन में उन्होंने आलोचना व इतिहास के अलावा कविता, नाटक, उपन्यास व संपादन विधाओं को भी समृद्ध किया।

- 1913 में मिश्रबन्धुओं द्वारा 'मिश्रबन्धु विनोद' प्रकाशित

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा 1929 में प्रकाशित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इतिहासकार के रूप में आचार्य रामचंद्र शुक्ल की सबसे बड़ी विशेषता है -कवियों और साहित्यकारों के जीवन चरित संबन्धी जानकारी के स्थान पर उनकी रचनाओं के साहित्यिक मूल्यांकन को प्रमुखता देना।

अचार्य रामचंद्र शुक्ल भारत के बीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध इतिहासकार और साहित्यकार थे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल एक निबंधकार, अनुवादक, संपादक और आलोचक के रूप में जाने जाते हैं। इन्होंने अपनी प्रतिभा से भारतीय हिन्दी साहित्य में क्रांति पैदा कर दी थी। इनके समकालीन लेखक उस समय के हिन्दी गद्य को शुक्ल युग नाम से पुकारते हैं। रामचंद्र

शुक्ल की सबसे बड़ी खासियत यह थी कि वह अपनी रचनाओं में बहुत कम से कम शब्दों में बहुत अधिक बातें कह डालते थे। रामचंद्र शुक्ल जी की रचनाओं में सबसे प्रसिद्ध है – 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'। इस रचना में उन्होंने हिन्दी साहित्य के सभी कवि और रचनाकारों का वर्णन किया है और उनकी रचनाओं का ज़िक्र किया है। हिन्दी साहित्य का इतिहास लिख कर उन्होंने इतिहास रच दिया और पूरे साहित्य जगत में वे मशहूर होते गए। शुक्ल जी काशी के हिंदू विश्वविद्यालय में हिन्दी के अध्यापक के पद पर कार्यरत रहे और हिन्दी साहित्य लेखन की परंपरा में उनका योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा।

- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा 1929 में 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' का प्रकाशन

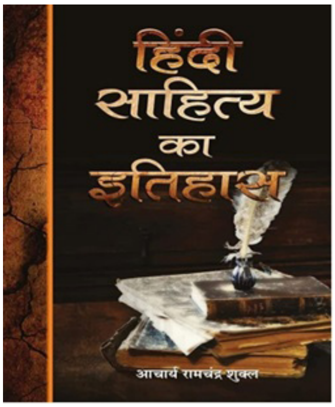

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा 1929 में प्रकाशित '**हिन्दी साहित्य का इतिहास**' हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

आचार्य शुक्ल के इतिहास लेखन के लगभग एक शताब्दी बाद आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' प्रकाशित किया। इस ग्रंथ ने हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन के लिए नयी दृष्टि, नयी सामग्री प्रदान की। वस्तुतः आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की अनेक धारणाओं और स्थापनाओं को चुनौति देते हुए सबल प्रमाणों के आधार पर खण्डित किया। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य का इतिहास ही नहीं भूगोल भी बदला। उनके द्वारा लिखित 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' ने हिन्दी साहित्य के इतिहास को देखने का नया दृष्टिकोण दिया। उनकी पुस्तकें 'नाथ संप्रदाय' और 'कबीर' ने हिन्दी साहित्य में निर्गुण भक्ति साहित्य को रेखांकित किया तो हिन्दी साहित्य की आलोचना को भरपूर समृद्ध बनाया। हिन्दी को उसके विकास के मार्ग दिखाने वाले आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने काशी हिंदू विश्वविद्यालय में 1929 में संस्कृत साहित्य में शास्त्री किया, 1930 में ज्योतिष में आचार्य की उपाधि ली। बाद में उन्होंने विश्वविद्यालय में अध्यापन भी किया।

- आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा सन् 1940 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' प्रकाशित

साहित्येतिहास ग्रंथों की रचना विभिन्न विद्वानों के सामूहिक सहयोग से भी हुई। इनमें डॉ. नगेन्द्र के संपादकत्व में 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' तथा नागरणी प्रचारिणी सभा द्वारा 'हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास' सोलह भागों में प्रस्तुत किया गया। डॉ. नगेन्द्र द्वारा संपादित ग्रंथ नवीन शोध परिणामों और विकसित साहित्य चेतना को दृष्टिगत करते हुए लिखा गया है। नागरणी प्रचारणी सभा द्वारा प्रकाशित ग्रंथ के प्रत्येक खंड को अलग–अलग विद्वानों ने संपादित किया है। इनमें हिन्दी साहित्य की बिखरी सामग्री को संगठित करने का प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास'

▶ विभिन्न विद्वानों के सामूहिक सहयोग से साहित्येतिहास ग्रंथों की रचना

दो भागों में लिखा है। डॉ. गुप्त ने साहित्य को वैज्ञानिक दृष्टि से प्रस्तुत किया है। हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की परंपरा अनेक विद्वानों के इतिहास ग्रंथों से समृद्धी प्राप्त करती जा रही है। कुछ महत्वपूर्ण इतिहास ग्रंथों का नामोल्लेख भी किया जाना समीचीन जान पडता है। यथा –'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास' (डॉ. बच्चन सिंह) 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (डॉ. विजयेन्द्र स्नातक) 'हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास' (डॉ. सुमन राजे) 'हिन्दी साहित्य का अतीत' (विश्वनाथ प्रसाद मिश्र) 'हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास' (डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी) आदि।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

हिन्दी साहित्येतिहास लेखन का प्रथम प्रयास फ्रांसीसि विद्वान गार्सा-दा-तांसी ने फ्रेंच भाष में किया। दो भागों में लिखा यह ग्रंथ सर्वप्रथम हिन्दी काव्य एवं कवियों का रचनाकाल के आधार पर लेखा–जोखा प्रस्तुत करता है। वस्तुतः साहित्येतिहास लेखन की परंपरा में कवियों की काव्य रचनाओं का कालक्रमानुसार परिचय देनेवाला यह पहला गौरवशाली ग्रंथ है। इसी परंपरा में शिवसिंग सेंगर ने 'शिवसिंग सरोज' की रचना की जिसमें लगभग एक हजार कवियों और उनकी कविताओं का उदाहरण सहित व्याख्या है। जॉर्ज ग्रियर्सन द्वारा रचित 'मॉडर्न वर्नाकुलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान' में कवियों एवं लेखकों का कालक्रमानुसार वर्गीकरण करते हुए उनकी प्रवृत्तियों को स्पष्ट किया गया है। साहित्येतिहास लेखन की परंपरा को मिश्रबंधुओं ने चार भागों में 'मिश्रबंधु विनोद' प्रकाशित कर आगे बढाया। अज्ञात कवियों को प्रकाश में लाने तथा साहित्य के विभिन्न अंगों पर प्रकाश डालने का श्रेय इन ग्रंथों को जाता है।

सन् 1929 ई में रामचंद्र शुक्ल द्वारा प्रकाशित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' साहित्येतिहास लेखन परंपरा में मील का पत्थर सिद्ध हुआ। यह ग्रंथ कई मायने में श्रेष्ठ है। युगीन परिस्थितियों के संदर्भ में साहित्य के विकास की व्याख्या करना, नौ सौ वर्षों के हिन्दी साहित्य को चार सुस्पष्ट कालखंडों में प्रवृत्तियों के आधार पर विभक्त करना, साहित्यकारों के जीवन चरित्र संबंधी इतिवृत्त के स्थान पर उनकी रचनाओं का साहित्यिक मूल्यांकन प्रस्तुत करना, भक्तिकाल को निर्गुण एवं सगुण धाराओं में बांट कर प्रत्येक को दो–दो शाखाओं–ज्ञानाश्रयी एवं प्रेमाश्रयी शाखा तथा कृष्णभक्ति एवं रामभक्ति शाखा में विभक्त करना आदि विशेषताएँ आचार्य शुक्ल को इस परंपरा में महत्वपूर्ण स्थान दिलाती है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन के प्रथम प्रयासों पर टिप्पणी लिखिए।
2. शिवसिंग सेंगर के इतिहास ग्रंथ की न्यूनताओं पर टिप्पणी लिखिए।
3. 'मिश्रबंधु विनोद' की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
4. हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी के योगदान पर प्रकाश डालिए।
5. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी के इतिहास ग्रंथ की विशेषताओं पर टिप्पणी लिखिए।
6. हिन्दी साहित्येतिहास की परंपरा एवं विभिन्न विद्वानों के योगदान पर प्रकाश डालिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी भाषा की संरचना - डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
3. हिन्दी साहित्य का आदिकाल - आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
5. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी भाषा का इतिहास-डॉ धीरेन्द्र वर्मा
2. हिन्दी भाषा का इतिहास-डॉ भोलानाथ तिवारी
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास-डॉ नगेन्द्र
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचंद्र शुक्ल

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

इकाई : 2

हिन्दी साहित्येतिहास के आधार

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- उन स्रोतों से अवगत होता है जिनके आधार पर हिन्दी साहित्य इतिहास ग्रंथ लिखे गए
- प्राचीन साहित्यकारों के काल निर्धारण एवं रचनाकाल के निर्णय में योग देनेवाली ऐतिहासिक सामग्रियों को समझता है

Background / पृष्ठभूमि

सामान्यतः साहित्य के इतिहास में आलोचनात्मक दृष्टिकोण का तथा साहित्यालोचन में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का उपयोग किया जाता है। तथा इस दृष्टि से ये दोनों एक दूसरे के पूरक सिद्ध होते हैं। फिर भी हमें इस भ्रांति से बच्चना चाहिए कि ये दोनों मूलतः एक ही है। इतिहास का लक्ष्य सदा अतीत की व्याख्या करते हुए विवेच्य वस्तु के विकास क्रम को स्पष्ट करने का होता है। जबकि आलोचना का लक्ष्य वस्तु के गुण दोषों का अन्वेषण करते हुए उसका मूल्य निर्धारित करना होता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि साहित्य का इतिहासकार जहाँ अतीत के सृजनकार्य को युग विशेष के संदर्भ में विश्लेषण करता है वहाँ आलोचक स्थापित मूल्यों के आधार पर कृतियों के मूल्यपरक तत्वों का उद्घाटन करता है। हिन्दी साहित्य का इतिहास मुख्य रूप से हिन्दी भाषा का मूल उद्गम और उसके क्रमिक विकास को समझाता है, क्योंकि साहित्य में परिवर्तित सामूहिक चित्तवृत्तियों को आधार बनाकर साहित्य की परंपरा का व्यवस्थित अनुशीलन ही साहित्य का इतिहास कहलाता है। और यह अध्ययन मुख्य रूप से हिन्दी साहित्य या फिर हिन्दी भाषा के विकास तथा भाषा में विभिन्न समय में किए गए रचनाओं के लेखन तथा उनकी प्रामाणिकता और अध्ययन के ऊपर ही निर्भर है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

साहित्यिक प्रवृत्तियां, वीरगाथाकाल,ऐतिहासिक कालक्रम, सामाजिक–सांस्कृतिक परिघटना, शासक और शासन काल

Discussion / चर्चा

साहित्य का इतिहास केवल तिथियों का क्रम नहीं है और न ही केवल विषय–विश्लेषण का। कालक्रम के बीच होनेवाले परिवर्तनों की पहचान साहित्येतिहास के मूल आधार हैं। एक लंबे समय का तिथिक्रम विहीन विश्लेषणात्मक अध्ययन अतीत के वस्तुगत यथार्थ को विकृत कर सकता है। इसलिए सामान्यतः साहित्येतिहास का लेखक वर्णन और विश्लेषण का समन्वय

▶ साहित्येतिहास के मूल आधार कालक्रम के बीच होनेवाले परिवर्तन है

करने की कोशिश से साहित्येतिहास के आधार को समझाते हैं। यह पद्धति या कार्य थोडी जटिल है, क्योंकि कालों का विभाजन मनमाने ढंग से नहीं, बल्कि इतिहासकार द्वारा अनुभूत ऐतिहासिक विकास–क्रम के तर्क के आधार पर होना अनिवार्य है।

▶ साहित्येतिहास के आधार को समझने के लिए उसके सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक प्रवृत्तियों की समानता का विचार करना जरूरी है

साहित्य के इतिहास के काल विभाजन के कई आधार प्रयुक्त होते रहे हैं। इनमें से ऐतिहासिक कालक्रम के आधार पर आदिकाल, मध्यकाल, आधुनिक काल, साहित्यिक प्रवृत्ति के आधार पर वीरगाथाकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, छायावाद आदि, सामाजिक–सांस्कृतिक परिघटना के आधार पर लोकजागरण काल, नवजागरण काल आदि को लेकर किया गया विभाजन अधिक उपयोगी और मान्य साबित हुआ है। इसके अतिरिक्त विभिन्न साहित्येतिहासों में शासक और शासन काल के आधार पर विक्टोरिया युग, मुगल युग आदि, लोकनायक और उसके प्रभाव काल के आधार पर गांधी युग, नेहरू युग आदि । इसके अलावा साहित्यिक अग्रदूतों के प्रभाव को आधार बनाकर भारतेंदु युग, द्विवेदी युग आदि भी प्रयुक्त हुआ है।

▶ साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर काल विभाजन

काल विभाजन के आधार के संबंध में सामान्यतः दो प्रकार की मान्यताएँ प्रचलित हैं। पहला है साहित्य के इतिहास में काल विभाजन विशुद्ध साहित्यिक प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए होना चाहिए, क्योंकि साहित्य सर्वथा स्वतंत्र है। दूसरा है साहित्य में अन्ततः समाज की ही अभिव्यक्ति होती है, इसलिए समाज की विभिन्न परिस्थितियों के आधार पर साहित्येतिहास का काल विभाजन किया जाना चाहिए। क्योंकि प्रत्येक स्थिति में किसी युग की साहित्य चेतना की अभिव्यक्ति केवल साहित्यिक प्रत्यय के आधार पर नहीं हो सकता है।

▶ आचार्य रामचंद्र शुक्ल को साहित्येतिहास का आधार स्तंभ मानना

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की दीर्घ परंपरा में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के कार्य मध्यवर्ती प्रकाश स्तंभ है, जिसके सामने सभी पूर्ववर्ती प्रयास आभा-शून्य प्रतीत होते हैं और साथ ही साथ सभी परवर्ती प्रयास उसके आलोक से आलोकित हैं। वस्तुतः इस समय तक हिन्दी साहित्य के इतिहास का जो ढांचा, रूप–रेखा, काल विभाजन एवं वर्गीकरण प्रचलित है, वह ज्यादा से ज्यादा आचार्य शुक्ल के द्वारा ही प्रस्तुत एवं प्रतिष्ठित है। लेकिन उनके इतिहास लेखन के अनन्तर विगत तीस-पैंतीस वर्षों में हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में पर्याप्त अनुसंधान कार्य हुआ है।

1.2.1 हिन्दी साहित्येतिहास लेखन के आधार

▶ 'मिश्रबंधु विनोद' साहित्येतिहास ग्रन्थों में महत्त्वपूर्ण

हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास 'इस्तवार द ला लितरेच्युर ऐन्दुई एें ऐन्दुस्तानी' में गार्सा-द-तासी ने यद्यपि अनेक हिन्दी–उर्दू कवियों को स्थान दिया है तथा विस्तृत समाग्री देने का प्रयास किया है, किन्तु कालक्रमिक न होने के कारण उनका इतिहास कवियों का संग्रह बनकर रह गया है। इतिहास के कालक्रम को उन्होंने अकारादि क्रम से प्रस्तुत किया है और काल विभाजन उसमें नहीं के बराबर है। शिवसिंह सेंगर के 'शिवसिंह सरोज' का विश्लेषण की दृष्टि से उतना महत्व नहीं है, जितना सामग्री संचयन की दृष्टि से। उनका काल विभाजन शताब्दियों के अनुसार है, साहित्य प्रवृत्तियों के अनुसार नहीं । ग्रियर्सन ने अपने इतिहास 'द मार्डन वर्णाक्युलर लिट्रेचर ऑफ़ हिन्दुस्तान' में कालक्रम, साहित्यिक प्रवृत्तियों और व्यक्तियों के नामों आदि का सहारा लिया है। इन सबको मिलाकर ग्रियर्सन ने हिन्दी साहित्य का कालक्रमिक और प्रवृत्यात्मक इतिहास प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। काल विभाजन की दृष्टि से मिश्रबंधुओं का 'मिश्रबंधु विनोद' एक महत्वपूर्ण साहित्येतिहास है। इसमें प्रस्तुत काल विभाजन ज्यादा विकसित रूप से किया गया है।

1.2.2 रामचंद्र शुक्ल के हिन्दी साहित्येतिहास लेखन के आधार

साहित्य के विकास और समाज से उसके संबंध के बारे में अपनी सुनिश्चित दृष्टि के आधार पर आचार्य शुक्ल ने पहली बार सुसंगत काल विभाजन किया। 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में उन्होंने हिन्दी साहित्य का काल विभाजन दो आधारों पर किया है। पहला, कालक्रम के आधार पर और दूसरा साहित्यिक प्रवृत्तियों की प्रधानता के आधार पर। कालक्रम के आधार पर उन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहास को आदिकाल, पूर्व मध्यकाल, उत्तर- मध्यकाल और आधुनिक काल में विभाजित किया और साहित्यिक प्रवृत्तियों की प्रधानता के अनुसार वीरगाथाकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और गद्यकाल में भी बांटा है। आचार्य शुक्ल ने पहली बार साहित्य के काल विभाजन और नामकरण की एक व्यवस्थित पद्धति कायम की और उसको एक ठोस आधार दिया। इतिहासकार के रूप में आचार्य शुक्ल की सबसे बडी विशेषता कवियों और साहित्यकारों के जीवन चरित संबंधी इतिवृत्त के स्थान पर उनकी रचनाओं के साहित्यिक मूल्याकंन को प्रमुखता देना। उसी प्रकार विभिन्न काव्यधाराओं और युगों की साहित्यिक प्रवृत्तियों के निर्धारण में भी उन्हें असाधारण सफलता प्राप्त हुई है। इस प्रकार हम पाते हैं कि हिन्दी साहित्य लेखन की परंपरा में आचार्य शुक्ल का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है और उनका इतिहास ही कदाचित अपनी विषय का पहला ग्रंथ है जिसमें अत्यंत सूक्ष्म एवं व्यापक दृष्टिकोण, स्पष्ट विश्लेषण और प्रामाणिक निष्कर्षों का सन्निवेश मिलता है।

▶ सुसंगत काल विभाजन का श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को है

1.2.3 रामचंद्र शुक्ल के बाद हिन्दी साहित्येतिहास लेखन के आधार

आचार्य शुक्ल के बाद साहित्येतिहास लेखन की परंपरा का विकास सही अर्थों में विस्तृत रूप से हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' में किया गया है। उन्होंने शुक्ल के इतिहास की दो मुख्य विशेषताओं को महत्वपूर्ण माना है, ऐतिहासिक काल विभाजन और साहित्यिक मूल्यांकन। 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' के अन्तर आचार्य द्विवेदी की इतिहास संबंधी कुछ और रचनाऐं भी प्रकाशित हुई हैं – हिन्दी साहित्यः उद्‌भव और विकास, 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' आदि। वस्तुतः वे पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने आचार्य शुक्ल की अनेक धारणाओं और स्थापनाओं को चुनौती देते हुए उन्हें सबल प्रमाणों के आधार पर खंडित किया। उन्होंने हिन्दी साहित्य के अध्येयताओं के लिए एक व्यापक एवं संतुलित इतिहास दर्शन की भूमिका तैयार की। आचार्य द्विवेदी ने जहाँ परंपरा पर बल दिया, वहाँ आचार्य शुक्ल ने युग स्थिति पर, अतः कहा जा सकता है कि दोनों के मत इस दृष्टि से एक दूसरे के पूरक हैं।

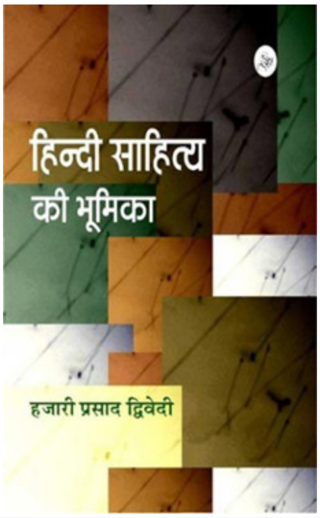

▶ सन् 1940 में हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के 'हिन्दी साहित्य की भूमिका'

आचार्य द्विवेदी के ही साथ -साथ इस क्षेत्र में अवतरित होने वाले एक अन्य विद्वान डॉ. रामकुमार वर्मा हैं। इनकी 'साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' नामक ग्रंथ में युगों एवं धाराओं के नामकरण में कुछ परिवर्तन कर उन्हें सरल रूप दे दिया है। गणपति चन्द्र गुप्त ने इस कालखण्ड में 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' लिखने का प्रयास किया है। उन्होंने हिन्दी साहित्य का आरंभ सन् 1184 के शालीभद्र सूरि कृत 'भरतेश्वर बाहुबली रास' से माना है। उनका मानना है कि भाषा के उद्‌भव के पूर्व ही उसके साहित्य का आविर्भाव मानना उचित नहीं है। उन्होंने साहित्येतिहास लेखन को आदिकाल, पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल में बाँटा है।

- 1938 ई में डॉ. रामकुमार वर्मा के 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास'

उक्त विवेचन का सारांश यह हैः–

- काल विभाजन साहित्यिक प्रवृत्तियों और रीति आदर्शों की समानता के आधार पर किया गया है।
- युगों का नामकरण यथा संभव मूल साहित्य-चेतना को आधार मानकर साहित्यिक प्रवृत्ति के अनुसार किया गया है।
- युगों का सीमांकन मूल प्रवृत्तियों के आरंभ और अवसान के अनुसार किया गया है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में काल विभाजन के लिए कई पद्धतियाँ अपनायी गयी है जिन पर विस्तार पूर्वक आगे विचार किया जाएगा।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

हिन्दी साहित्येतिहास लेखन के आधार पर ध्यान देते समय मुख्यतः वैशिष्ट्य की जगह सामान्य गुणों की खोज पर बल देना पडता है। साहित्य का इतिहासकार रचनाओं में निहित सामान्य गुणों की खोज करता है। इन सामान्य गुणों या प्रवृत्तियों की जानकारी और समझ के सहारे किसी युग की मूल चेतना का आभास पाया जा सकता है। साहित्य की अनेकानेक प्रवृत्तियों का आदि-अन्त, उत्कर्ष एवं अपकर्ष ही इतिहास का काल विभाजन या विभिन्न युगों की सीमाओं का निर्धारण करता है। साहित्य के इतिहास का काल विभाजन जिस समाज के साहित्य का वह इतिहास है, उस समाज के उत्पादन संबंधों के परिर्वतन के अनुसार ही होना चाहिए। साहित्य में परिवर्तन अपेक्षाकृत धीरे–धीरे होता है। काल विभाजन के पीछे सामाजिक उत्पादन संबंधों के आधार को जरूरी मानते हुए यह कहना उचित होगा कि साहित्य के इतिहास का आधार ऐतिहासिक कालक्रम के आधार पर होता है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन के आधारभूत तत्वों पर प्रकाश डालिए।
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किन आधारों पर साहित्य के इतिहास को निर्धारित किया है?
3. हजारीप्रसाद द्विवेदी जी का इतिहास ग्रंथ किस दृष्टिकोण से शुक्ल जी के ग्रंथ से विभिन्न है। स्पष्ट कीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी भाषा की संरचना - डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
2. हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. भोलानाथ तिवारी
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

इकाई : 3

हिन्दी साहित्य का काल विभाजन

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल विभाजन से परिचित होता है
- काल विभाजन करनेवाले इतिहासकारों से अवगत होता है
- काल विभाजन के विभिन्न समय सीमा से अवगत होता है

Background / पृष्ठभूमि

साहित्य के इतिहास पर विचार करने पर सबसे विचारणीय प्रश्न यह है कि काल विभाजन का सही आधार क्या हो सकता है। काल विभाजन का नामकरण साहित्य के इतिहास की एक महत्वपूर्ण समस्या रही है। किसी भी नामरकण के पीछे कुछ-न-कुछ तर्क अवश्य रहता है और रहना चाहिए। हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में काल विभाजन के लिए प्रायः चार पद्धतियों का अवलंबन लिया गया है। इन सभी पद्धतियों के अपने गुण-दोष हैं। परंतु यहाँ भी समन्वयात्मक दृष्टिकोण ही श्रेयस्कर है। इस समन्वित पद्धति को स्वीकार कर लेने पर हिन्दी साहित्य के काल विभाजन की समस्या बहुत कुछ हल हो जाती है।

किसी भी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन करने की सर्वाधिक उपर्युक्त प्रणाली उस साहित्य में प्रवाहित साहित्य धाराओं और विविध प्रवृत्तियों के आधार पर उसे विभाजित करना है। युग की परिस्थितियों के अनुकूल साहित्य की विषय तथा शैलीगत प्रवृत्तियाँ परिवर्तित होती रहती है। हिन्दी साहित्य के विषय में भी यही बात युक्तियुक्त प्रतीत होती है। एक विशेष काल में समाज की विशेष परिस्थितियाँ एवं तत्सम्बन्धी विचारधाराएँ रही है और उन्हीं के अनुरूप साहित्यिक रचनाएँ प्रस्तुत हुई हैं।

Keywords / मुख्य बिन्दु

आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिककाल

Discussion / चर्चा

जिस काल या युग में समाज का जो रूप होता है साहित्य का उसी रूप के साथ सामजंस्य होता है और जिस काल में जिस विशेष ढंग की रचनाओं की प्रचुरता होगी उसका नामकरण भी उन रचनाओं के आधार पर ही किया जाएगा। यद्यपि प्रत्येक काल की रचनाओं में कुछ

विशेष सामान्य लक्षण पाए जाते हैं, इसका यह तात्पर्य नहीं है कि एक काल में अन्य प्रकार की रचनाएँ नहीं पाई जाती अथवा एक ग्रंथ में एक के सिवाय अन्य रसों का अस्तित्व नहीं पाया जाता। वास्तव में एक काल में जिस प्रवृत्ति का प्राबल्य होता है, उसी के आधार पर काल का नामकरण होता है। साहित्य के क्षेत्र में काल विभाजन का यह तात्पर्य नहीं होता है कि एक काल के समाप्त होते ही दूसरे दिन साहित्यिक धारा दूसरी दिशा में प्रवाहित होने लगती है। वास्तव में साहित्य के इतिहास में गणित के नियम लागू नहीं होते । एक काल की विचारधारा दूसरे काल तक जाती है और एक प्रकार की साहित्यिक प्रवृत्ति का पूर्ण अंत तो वैसे भी कभी नहीं होता। हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में काल विभाजन के लिए अनेक विद्वानों ने अलग-अलग पद्धतियों का अवलंबन किया है। किसी ने संपूर्ण हिन्दी साहित्य के इतिहास को चार युगों अथवा कालखण्डों में विभक्त किया तो किसी ने केवल तीन युगों तक ही सीमित रखा। किसी विद्वान ने साहित्य का विभाजन विधा क्रम से किया। इस प्रकार के अनेक इतिहास या खण्ड इतिहास हिन्दी साहित्य में उपलब्ध हैं। इन सभी पद्धतियों के अपने गुण और दोष भी है। साहित्य के इतिहास के काल विभाजन में जिन विद्वानों ने योगदान दिया उन पर प्रकाश डालना नितांत आवश्यक है।

▶ विशेष ढेग की रचनाओं की प्रचुरता पर नामकरण

1.3.1 जॉर्ज ग्रियर्सन का काल विभाजन

हिन्दी साहित्य के काल विभाजन के क्षेत्र में प्रथम प्रयास करने का श्रेय जॉर्ज ग्रियर्सन का है। पर जैसा की उन्होंने अपने ग्रंथ में खुद ही स्वीकार किया है, की उनके सामने बहुत सी ऐसी कठिनाइयां थीं जिससे वे हिन्दी साहित्य के काल विभाजन में पूर्णतः सफल नहीं हो सके। उनका काल विभाजन ग्यारह भागों में था। उनके काल विभाजन में वस्तुतः युग विशेष के द्योतक कम है, अध्यायों के शीषर्क अधिक है। इसके अतिरिक्त कालक्रम का प्रवाह भी इसमें अविछिन्न रूप से नहीं चलता। कालों का नामकरण भी सर्वत्र किसी एक आधार पर नहीं है- कहीं किसी धार्मिक संप्रदाय को इसका आधार बताया गया है, तो कहीं किसी शासक विशेष को, और कहीं शताब्दी का उल्लेख मात्र ही है। यद्यापि ग्रियर्सन जी के काल विभाजन में अनेक असंगतियाँ तथा त्रुटियाँ पाई गई थीं, परंतु काल विभाजन करने का प्रथम प्रयास होने के कारण इसका अपना महत्व है ।

▶ जॉर्ज ग्रियर्सन ने साहित्य का काल विभाजन 11 खंडों में किया

1.3.2 मिश्रबंधुओं का काल विभाजन

1913 में मिश्रबंधुओं ने 'मिश्रबंधु विनोद' में काल विभाजन का नया प्रयास किया जो की जॉर्ज ग्रियर्सन जी के प्रयास से ज्यादा बेहत्तर रहा और उन्होंने हिन्दी साहित्य का विभाजन कुछ इस प्रकार किया:

आरंभिक काल	:	पूर्वारंभिक काल (600-1343 वि.)
		उत्तरारंभिक काल (1344 से 1444 वि.)
माध्यमिक काल	:	पूर्व माध्यमिक काल (1445-1560 वि.)
		प्रौढ़ माध्यमिक काल (1561 से 1680 वि.)
अलंकृत काल	:	पूर्वालंकृत काल (1681-1790 वि.)
		उत्तरालंकृत काल (1791 से 1889 वि.)

परिवर्तन काल : (1890 से 1925 वि.)

वर्तमान काल : (1926 वि. से अब तक)

▶ मिश्रबंधुओं ने 'मिश्रबंधु विनोद' में काल विभाजन का नूतन प्रयास

जहाँ तक मिश्रबंधुओं की काल विभाजन की पद्धति में जो वर्गीकरण किया गया है वह संयक एवं स्पष्ट है, किन्तु तथ्यों की दृष्टि से इसमें भी अनेक असंगतियां विद्यमान है। उन्होंने भी ग्रियर्सन की भांति 700 से 1300 ई. तक के युग को हिन्दी साहित्य के साथ संबद्ध कर दिया जो वस्तुतः अपभ्रंश का युग है।

1.3.3 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का काल विभाजन

▶ आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में इतिहास को 4 काल खंडों में विभाजित किया

मिश्र बन्धुओं के पश्चात् आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सन् 1929 में 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' प्रस्तुत करते हुए काल विभाजन का नया प्रयास किया। इनका काल विभाजन अधिक सरल, स्पष्ट एवं सुबोध है। अपनी इसी विशेषता के कारण वह आज तक सर्वमान्य एवं सर्वत्र प्रचलित है। उनका काल विभाजन इस प्रकार है-

1. आदिकाल (वीरगाथा काल) संवत् 1050 से 1375
2. पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) संवत् 1375 से 1700
3. उत्तर मध्यकाल (रीतिकल) संवत् 1700 ते 1900
4. आधुनिक काल (गद्यकाल) संवत् 1900 से अब तक।

शुक्लोत्तर इतिहासकारों में से अनेक ने आचार्य शुक्ल के उपर्युक्त काल विभाजन की तीव्र आलोचना तो की तथा उनके अनेक दोषों को भी स्पष्ट किया। किंतु उसे संशोधित करके नवीनता देने में सफलता किसी को नहीं मिली। मात्र डॉ. रामकुमार वर्मा का ही नाम इस प्रसंग में उल्लेखनीय है, जिन्होंने नया काल विभाजन प्रस्तुत किया।

1.3.4 डॉ. रामकुमार वर्मा का काल विभाजन

आचार्य शुक्ल के पश्चात् डॉ. रामकुमार वर्मा का नाम इस प्रसंग में उल्लेखनीय है, जिन्होंने अपने इतिहास ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास' में नया काल विभाजन प्रस्तुत किया। डॉ. वर्मा के विभाजन के अंतिम तीन काल विभाजन आचार्य शुक्लजी के ही विभाजन के अनुरूप है, केवल 'वीरगाथाकाल' के स्थान पर 'चारणकाल' एवं 'सन्धिकाल' नाम देकर अपना नयापन स्थापित किया है। उनका काल विभाजन आचार्य शुक्ल के काल विभाजन से अधिक भिन्न नहीं है। उनका काल विभाजन इस प्रकार है-

1. सन्धिकाल (750 - 1000 वि.)
2. चारण काल (1000 - 1375 वि.)
3. भक्तिकाल (1375 - 1700 वि.)
4. रीतिकाल (1700 – 1900 वि.)
5. आधुनिक काल (1900 से अब तक)

▶ 'हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास' में हिन्दी साहित्य को 5 कालों में विभाजित किया है

डॉ. वर्मा के इस विभाजन के अंतिम चार कालखण्ड तो आचार्य शुक्ल के ही विभाजन के अनुरूप है। केवल 'वीरगाथा काल' के स्थान पर 'चारणकाल' नाम अवश्य दे दिया है किंतु इसमें एक विशेषता 'सन्धिकाल' की है जिसमें वस्तुतः गुणवृत्ति का सूचक कम एवं दोषवृत्ति का रूपक अधिक है। अतः इसे शुक्ल के काल विभाजन का परिष्कृत रूप नहीं कहा जा सकता। फिर भी उन्होंने किन्हीं अंशों में आचार्य शुक्ल की रूढी को त्यागने का साहस अवश्य किया है, जो इस युग के लिए कम महत्व की बात नहीं है।

1.3.5 बाबू श्यामसुन्दर दास का काल विभाजन

बाबू श्यामसुंदर दास ने अपने इतिहास के नामकरण व काल विभाजन का आधार संवत् को माना है और हिन्दी साहित्य के इतिहास को चार काल खंडों में विभाजित किया है जो इस प्रकार है-

▶ बाबू श्यामसुंदर दास के द्वारा साहित्य इतिहास के नामकरण व काल विभाजन का आधार संवत् को मानना है

1. आदिकाल (वीरगाथा का युग संवत् 1000 से संवत् 1400 तक)
2. पूर्व मध्ययुग (भक्ति का युग, संवत् 1400 से संवत् 1700 तक)
3. उत्तर मध्ययुग (रीति ग्रन्थों का युग, संवत् 1700 से, संवत् 1900 तक)
4. आधुनिक युग (नवीन विकास का युग, संवत् 1900 से अब तक)

1.3.6 डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त का काल विभाजन

डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने अपने ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' में साहित्य का काल विभाजन वैज्ञानिक दृष्टिकोण से किया। उन्होंने साहित्य के प्रथम काल को आदिकाल नामकरण करना उचित समझा और जहाँ तक 'पूर्व मध्यकाल' एवं 'उत्तर मध्यकाल' की बात है इनके लिए क्रमशः 'भक्तिकाल' एवं 'रीतिकाल' नाम रूढ़ हो गया था लेकिन गणपतिचन्द्र का मानना था कि इस नामकरण से इन कालखण्डों की एक-एक प्रवृत्ति को ही प्रमुखता मिलती है शेष प्रवृत्तियां गौण हो जाती है। जिससे इन कालों के संयकबोध में बाधा उपस्थित होती है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए उन्होंने हिन्दी साहित्य का काल विभाजन निम्न तौर पर किया हैः-

▶ डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त का 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास'

- आदिकाल (सन् 1184-1350 ई.)
- पूर्व मध्यकाल (सन् 1350-1600 ई.)
- उत्तर मध्यकाल (सन् 1600-1857 ई.)
- आधुनिककाल (सन् 1857 से अब तक)

1.3.7 डॉ. नगेन्द्र का काल विभाजन

इस परम्परा में डॉ. नगेन्द्र का नाम भी उल्लेखनीय है। उन्होंने हिन्दी साहित्य का काल-विभाजन तथा नामकरण इस प्रकार किया है –

- आदिकाल- 7 वीं शती के मध्य से 14 वीं शती के मध्य तक।
- भक्तिकाल 14 वीं शती के मध्य से 17 वीं शती के मध्य तक।
- रीतिकाल- 17 वीं शती के मध्य से 19 वीं शती के मध्य तक।
- आधुनिक काल – 19 वीं शती के मध्य से अब तक।

उपर्युक्त काल विभाजन की परम्परा में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बाद कुछ विद्वानों ने थोड़ा-बहुत परिवर्तन करके अपना काल विभाजन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। परंतु शुक्ल का इतिहास लेखन का आधार ही अधिक वैज्ञानिक, तर्कसंगत और उपर्युक्त प्रतीत होता है। आचार्य शुक्ल के काल विभाजन को सर्वमान्य कहा जा सकता है, किंतु इसका यह तात्पर्य नहीं कि वह सर्वथा संगत एवं निर्दोष है। आचार्य शुक्ल ने जिन परिस्थितियों में इतिहास लिखा था, उस दृष्टि से वह ठीक है किंतु विगत वर्षों में हिन्दी के क्षेत्र में पर्याप्त अनुसंधान एवं चिंतन हुआ है जिसे ध्यान में रखकर विचार करने से आचार्य शुक्ल के प्रयास की अनेक न्यूनताएँ एवं त्रुटियां स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर होती है।

▶ आचार्य रामचंद्र शुक्ल का इतिहास लेखन अधिक वैज्ञानिक और उपर्युक्त है

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

प्रत्येक वस्तु का अपना इतिहास होता है, और यह इतिहास एकाएक अपने विकास की चरम स्थिति तक नहीं पहुँच पाता। इसके लिए एक या अनेक इतिहासकारों को क्रमशः सामग्री संकलन, वर्गीकरण, संश्लेषण–विश्लेषण आदि विभिन्न प्रक्रियाओं में से गुजरना पड़ता है। यदि इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होगा कि उसका भी विकास क्रमशः अनेक विद्वानों द्वारा हुआ है। प्रारंभ में गार्सा द तॉसी, शिवसिंह सेंगर ने मुख्यतः सामग्री-संकलन का कार्य किया तो जार्ज ग्रियर्सन एवं मिश्रबंधुओं ने वर्गीकरण की ओर ध्यान दिया तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उसकी विभिन्न प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनन्तर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने उसके विभिन्न पक्षों के साहित्यिक मूल्यांकन की दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य किया। हिन्दी का साहित्यिक क्षेत्र इतना व्यापक एवं विस्तृत है कि उसमें एक ही युग में अनेक प्रवृत्तियां एक साथ चलती हुई दृष्टिगोचर होती है। अतः साहित्य के काल विभाजन का आधार क्या होना चाहिए उस पर विभिन्न विद्वानों का अलग-अलग मत होना स्वाभाविक ही था।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. हिन्दी साहित्य के काल विभाजन पर आलेख तैयार कीजिए।
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल का काल विभाजन को श्रेष्ठ माना जाता है। इस विषय पर टिप्पणी तैयार कीजिए।
3. हिन्दी साहित्य के काल विभाजन का संक्षिप्त परिचय देकर काल विभाजन के औचित्य पर विचार कीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी भाषा की संरचना - डॉ.भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
2. हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. भोलानाथ तिवारी
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

इकाई : 4

काल विभाजन और नामकरण की समस्या

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- हिन्दी साहित्य के इतिहास में काल विभाजन और नामकरण की अवश्यकताओं को समझता है
- काल विभाजन और नामकरण के आधार तत्वों को समझता है
- हिन्दी साहित्येतिहास के काल विभाजन की समस्याओं से अवगत होता है

Background / पृष्ठभूमि

प्रत्येक इतिहास में अतीत का अध्ययन किया जाता है और अध्ययन की सुविधा के लिए अतीत को कई कालों या युगों में विभाजित किया जाता है। साथ ही साथ प्रत्येक काल को किसी न किसी नाम से पुकारा जाता है। इसी प्रक्रिया को नामकरण की प्रक्रिया से पुकारा जाता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के अध्ययन हेतु, उसका काल विभाजन किया जाता है और उन काल खण्डों का नामकरण भी किया जाता है। अलग-अलग विद्वानों ने अपने मतानुसार हिन्दी साहित्य के इतिहास को विभिन्न नाम देकर काल विभाजन किया है। जिससे काल विभाजन और नामकरण की समस्या भी उत्पन्न हुई है। काल विभाजन और नामकरण पर विचार करते समय हमें इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि काल विभाजन मात्र अध्ययन की सुविधा के लिए किया जाता है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

काल विभाजन, नामकरण, साहित्यिक प्रवृत्तियाँ, युग परिस्थितियाँ

Discussion / चर्चा

इतिहास को सही रूप से समझने के लिए काल विभाजन और नामकरण की आवश्यकता है। काल विभाजन और नामकरण करने से इतिहास में एक प्रकार की व्यवस्था आ जाती है। अतः काल विभाजन के बिना, साहित्य का इतिहास घटनाओं की मनमाने नामकरण और साहित्य का दिशाहीन प्रवाह हो जाएगा। अर्थात् काल विभाजन से साहित्य के विकास की दिशा, विकास को प्रभावित करनेवाले तत्वों, विभिन्न परिवर्तनों और मोड़ों का पता चलता है। इसके जरिए साहित्य की बदली प्रवृत्तियों को समझा जा सकता है और उनका मूल्यांकन किया जा सकता है। समय बदलने के साथ–साथ युग की परिस्थितयाँ और प्रवृत्तियाँ भी बदलती हैं।

▶ हिन्दी साहित्येतिहास को परखने के लिए विभिन्न काल एवं नाम से विभाजित करना

इतिहास का अध्ययन करने के लिए प्रत्येक युग की परिस्थितियां और प्रवृत्तियां पर भी विचार करना जरूरी है। हिन्दी साहित्य के इतिहास को उसकी परिस्थितियों में आनेवाले बदलाव के अनुसार विभिन्न कालों में विभिन्न नामों से बांटना जरूरी है। इसलिए हिन्दी साहित्य के इतिहास के अध्ययन हेतु काल विभाजन और नामकरण की आवश्यकता होती है।

1.4.1 हिन्दी साहित्य के काल विभाजन और नामकरण का आधार

▶ काल विभाजन और नामकरण का आधार साहित्यिक प्रवृत्ति और मूल चेतना होना चाहिए

हिन्दी साहित्येतिहास के काल विभाजन और नामकरण का उद्देश्य इतिहास की विभिन्न परिस्थितियों के संदर्भ में उसकी घटनाओं एवं प्रवृत्तियों के विकासक्रम को स्पष्ट करने से है। साहित्य की अन्तर्निहित चेतना के क्रमिक विकास, परंपराओं के उत्थान एवं पतन और विभिन्न प्रवृत्तियों के उदय को समझने के लिए काल विभाजन और नामकरण की आवश्यकता है।

साहित्य का विकास समाज में होनेवाले परिवर्तनों से होता है। समाज में जब भी कोई बडा परिवर्तन आता है, तो साहित्य पर उसका प्रभाव सबसे पहले पडता है। इस अवसर पर साहित्येतिहास का काल विभाजन सामाजिक या राजनीतिक इतिहास से अप्रभावित नहीं रह सकता। काल विभाजन और नामकरण के लिए कभी ऐतिहासिक कालक्रम को आधार बनाया जाता है तो कभी-कभार शासक और शासनकाल को। साहित्य का काल विभाजन और नामकरण अनेक विद्वानों द्वारा अनेक आधार पर किया जाता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल विभाजन और नामकरण का आधार इस प्रकार हैः–

- साहित्यिक प्रवृत्ति के आधार पर
- शासक और उनके शासन काल के अनुसार
- लोकनायक और उनके प्रभाव के अनुसार
- साहित्यकार का प्रभाव
- राजनीतिक परिवेश
- सामाजिक परिवेश
- धार्मिक परिवेश

▶ काल विभाजन और नामकरण की प्रक्रिया विवेक सम्मत होना है

अर्थात् काल विभाजन और नामकरण करते समय अनेक आधारों का सहारा लेना पडता है। अतः सही अर्थों में काल विभाजन और नामकरण वही है जो साहित्य की परंपरा को सही रूप में व्यक्त करने में सहायक सिद्ध हो।

1.4.2 हिन्दी साहित्येतिहास के काल विभाजन और नामकरण की समस्या

▶ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के काल विभजन को सबसे अधिक मान्यता प्राप्त हुआ

जब भी हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन और नामकरण की चेष्टा करते हैं तो हमारे सामने कई समस्याएँ उपस्थित हो जाती है। सबसे पहले यह तय करना कठिन है कि हिन्दी साहित्य का इतिहास कब से आरंभ होता है। क्योंकि इसके बारे में विद्वानों के बीच मतभेद है। हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध इतिहास लेखक जार्ज ग्रियर्सन ने अपने इतिहास ग्रंथ में हिन्दी साहित्य का आरंभ सातवीं शताब्दी से माना। इस मत को अस्वीकार करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पुरानी हिन्दी का जन्म सातवीं के आस-पास माना तथा उसमें सिद्धों-जैनों एवं नाथ पंथियों के काव्य लेखन पर भी बल दिया। शुक्ल के मतानुसार हिन्दी साहित्य के इतिहास का आरंभ संवत 1050 या 993 ई. से ही माना जाता है। एक ओर अचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आरंभ दसवीं शताब्दी से मानते हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा और डॉ. नगेंद्र इसका आरंभ सातवीं शताब्दी से मानते हैं।

हिन्दी साहित्य के काल विभाजन और नामकरण को लेकर एक और समस्या भी है, वह है हिन्दी भाषा और अपभ्रंश भाषा के पारस्परिक संबंध को लेकर। भाषा विज्ञान के विद्वानों के मतानुसार प्राकृत भाषा से अपभ्रंश भाषा का और अपभ्रंश भाषा से आधुनिक भारतीय भाषाओं जिनमें हिन्दी भी एक है, उसका विकास हुआ। इस दृष्टि से अपभ्रंश भाषा हिन्दी की जननी है। परन्तु कुछ विद्वान अपभ्रंश को हिन्दी से अलग न मानकर हिन्दी का ही एक रूप मानते हैं। उदाहरण के लिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपभ्रंश को 'प्राकृताभास हिन्दी' का दर्जा दिया है तो राहुल सांकृत्यायन अपभ्रंश को 'पुरानी हिन्दी' की संज्ञा देते हैं।

▶ अपभ्रंश भाषा को हिन्दी की जननी मानना

काल विभाजन का लक्ष्य अंततः इतिहास की विभिन्न परिस्थितियों के संदर्भ में उसकी घटनाओं एवं प्रवृत्तियों के विकास क्रम को स्पष्ट करना होता है। साहित्येतिहास पर भी यह बात लागू होती है। साहित्य की अंतर्निहित चेतना के क्रमिक विकास उसकी परंपराओं के उत्थान-पतन एवं उनकी विभिन्न प्रवृत्तियों के दिशा परिवर्तन आदि के कालक्रम को स्पष्ट करना ही काल विभाजन का लक्ष्य होता है, अन्यथा उसकी कोई उपयोगिता नहीं।

▶ काल विभाजन का लक्ष्य इतिहास के विकास क्रम को स्पष्ट करना है

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

काल विभाजन और नामकरण करते समय प्रायः साहित्यिक प्रवृत्ति को आधार बनाया जाता है। किसी भी सामान्य प्रवृत्ति के अभाव की स्थिति में सामाजिक,राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक और व्यक्ति परक आधारों को भी अपनाया जा सकता है। इन आधारों को अपनाते हुए हिन्दी साहित्य के इतिहास को चार कालों में विभाजित किया गया है:– आदिकाल, पूर्व मध्यकाल, उत्तर मध्यकाल और आधुनिक काल। इनका नामकरण भी किया गया है वे इस प्रकार हैं:– आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. काल विभाजन और नामकरण का मुख्य आधार काल विशेष की प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्ति है, स्पष्ट कीजिए।
2. काल विभाजन और नामकरण की समस्या पर आलेख तैयार कीजिए।
3. हिन्दी साहित्य के इतिहास को समझने के लिए काल विभाजन और नामकरण की आवश्यकता है, समझाइए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी भाषा की संरचना - डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
3. हिन्दी साहित्य का आदिकाल - आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
5. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी भाषा का इतिहास-डॉ धीरेन्द्र वर्मा
2. हिन्दी भाषा का इतिहास-डॉ भोलानाथ तिवारी
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास-डॉ नगेन्द्र
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचंद्र शुक्ल

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

आदिकाल

BLOCK-02

Block Content

Unit 1 : आदिकाल-सीमांकन, आदिकाल की परिस्थितियाँ, आदिकालीन साहित्य की विशेषताएँ

Unit 2 : आदिकाल-नामकरण की समस्या, प्रामाणिकता की समस्या

Unit 3 : अपभ्रंश साहित्यः प्रमुख कवि, जैन साहित्य, सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य

Unit 4 : रासो काव्य परंपरा, प्रमुख प्रवृत्तियाँ -प्रमुख कवि (चंदबरदाई, जगनिक, अमीर खुसरो, विद्यापति) लौकिक साहित्य, गद्य रचनाएँ

इकाई : 1

आदिकाल-सीमांकन, आदिकाल की परिस्थितियाँ, आदिकालीन साहित्य की विशेषताएँ

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- हिन्दी साहित्य के इतिहास के आदिकाल से परिचित होता है
- आदिकाल के सीमांकन से अवगत होता है
- आदिकाल की परिस्थितियों से अवगत होता है
- आदिकालीन साहित्य की विशेषताओं का परिचय प्राप्त करता है

Background / पृष्ठभूमि

किसी भी विषय के इतिहास को समझने के लिए उसका काल विभाजन अत्यंत अनिवार्य होता है। काल विभाजन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा ऐतिहासिक तथ्यों का सुगमता से अध्ययन किया जा सकता है। साहित्य के इतिहास में कालविभाजन या भिन्न–भिन्न युगों में भिन्न–भिन्न नामों की सार्थकता होती है। किसी विशेष युग में खास ढंग की रचनाएँ प्रायः मिलती है, खास प्रकार की प्रवृत्तियों की प्रमुखता होती है। अतः इन्हीं के आधार पर उस युग का नाम रख दिया जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' इसीलिए सर्वमान्य है क्योंकि उसमें विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों के अनुसार काल विभाजन किया गया है और प्रत्येक काल को एक निश्चित सीमा के अंदर रखा गया है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

अपभ्रंश, आश्रयदाता, काल-विभाजन, साहित्यिक प्रवृत्ति

Discussion / चर्चा

हिन्दी साहित्य के प्रथम काल को आदिकाल नाम दिया गया। आदिकाल की सीमा एवं नामकरण को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। हिन्दी भाषा के उद्‌भव और विकास पर दृष्टिपात करने के पश्चात यह तो स्पष्ट है कि अपभ्रंश हिन्दी से पूर्व प्रचलित भाषा थी तथा चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने इसे ही 'पुरानी हिन्दी' कहा है। जब अपभ्रंश भाषा हिन्दी के रूप में विकसित हो गई उस समय जो रचनाएँ लिखी गई वहीं से हिन्दी साहित्य के आरंभिक काल की शुरुआत मानी जा सकती है।

2.1.1 आदिकाल-सीमांकन

हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन करने वाले प्रथम इतिहासकार डॉ. ग्रियर्सन हैं। जार्ज ग्रियर्सन ने आदिकाल को 'चारण काल' कहा है तथा इसकी सीमा 700 ई. से 1300 ई. माना है। मिश्रबन्धुओं ने आदिकाल को 'प्रारम्भिक काल' कहकर इसकी समय सीमा 700 वि. से 1444 वि. तक मानी है। हिन्दी साहित्य के आविर्भाव काल को 'आदिकाल' नाम हजारीप्रसाद द्विवेदी ने दिया है तथा इसकी समय सीमा 1000 ई. से 1400 ई. तक मानी है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने इसे दो भागों - संधि काल (सं. 750 से सं. 1000) तथा चारण काल (सं. 1000 -1375) में बांटा है।

- ▶ हजारीप्रसाद द्विवेदी -आदिकाल

दूसरे पक्ष के कुछ विद्वानों का मानना है कि हिन्दी साहित्य का आरंभ ईसा की दसवीं शताब्दी के अंतिम सात वर्षों से हैं। इन विद्वानों में प्रमुख है आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और उन्होंने इसे 'वीरगाथाकाल' कहकर इसकी अवधि सं. 1050 से 1375 तक मानी है। आगे चलकर 'वीरगाथा काल' को 'अपभ्रंश काल' एवं देशभाषा काव्य में विभाजित करके सरहपाद, देवसेन आदि कवियों का परिचय देते हैं। राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार सरहपाद को हिन्दी का प्रथम कवि मान लेने से हिन्दी साहित्य के आरंभ की सीमा आठवीं शताब्दी (769 ई) निश्चित हो जाती है। रामचंद्र शुक्ल आदिकाल की अंतिम सीमा 1318 ई. तक मानते हैं। रामकुमार वर्मा और अन्य इतिहासकार भी अधिकांशतः शुक्ल से ही सहमत हैं।

- ▶ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- वीरगाथा काल

2.1.2 आदिकाल की परिस्थितियाँ

साहित्य मानव समाज की भावात्मक स्थिति और गतिशील चेतना की अभिव्यक्ति है। अतः उसके प्रेरक तत्व के रूप में मनुष्य के परिवेश का बहुत महत्व है। किसी भी काल के साहित्येतिहास को समझने के लिए उस परिवेश को ठीक प्रकार से समझना अत्यंत आवश्यक होता है। इसी दृष्टि से आदिकालीन साहित्य के इतिहास के साथ तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्थितियों को जानना अपेक्षित है। आदिकालीन हिन्दी साहित्य में भाव और भाषा शैली की दृष्टि से जो विविधता दिखाई देती है उसका मूल कारण तत्कालीन परिस्थितियां है। इन्हीं परिस्थितियों के मध्य आदिकालीन साहित्य की रचना हुई है।

- ▶ आदिकालीन हिन्दी साहित्य में भाव और भाषा-शैली की दृष्टि से विविधता

2.1.2.1 आदिकाल की सामाजिक परिस्थिति

जिस युग में धर्म और राजनीति की दशा दीन-हीन हो उसमें उच्च सामाजिकता की आशा नहीं की जा सकती। जनता शासन तथा धर्म दोनों और से निराश्रित होती जा रही थी। सामान्य जनता अशिक्षित थी। समाज में स्त्रियों के प्रति पूज्य भाव नहीं था। वे मात्र भोग्य बनकर रह गई थी। वह क्रय-विक्रय एवं अपहरण की वस्तु बनी जा रही थी। सती प्रथा भी इस काल का एक भयंकर अभिशाप था। फलतः सामान्य जाति के नारी के लिए पुरुष का जीवन और मृत्यु दोनों ही भयंकर घटना बन जाते थे। तत्कालीन भारत में स्वयंवर प्रथा भी थी जो पराया युद्ध के कारण बन जाती थी। सुंदर राजकुमारियों से बलपूर्वक विवाह करने के लिए राजपूतों में युद्ध छिड़ जाना एक सामान्य बात हो गई थी। राजा और सामंत रंगरलियों में व्यस्त रहते थे। पूजा पाठ तंत्र-मंत्र और जप करके लोग महामारी एवं युद्ध के संकटों को टालना चाहते थे। वर्ण व्यवस्था के प्रति लोगों में सम्मान नहीं रहा गया था। सांप्रदायिक तनाव बढने के कारण साहित्य और शास्त्र का ज्ञान सामान्य जनता के लिए अप्राप्य बन गया था। सामाजिक परिस्थिति की इस विषमता में जीनेवाली जनता भाव के स्तर पर निरंतर

▶ निराश्रित जनता

ऐसे विचारों की प्यासी रहती थी जो उसे सांत्वना देकर मानसिक शांति की ओर बढ़ा सके। हिन्दी के कवियों को जनता की इस स्थिति के अनुसार काव्य रचना की सामग्री जुटानी पड़ी।

2.1.2.2 आदिकाल की सांस्कृतिक परिस्थिति

▶ मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव

सम्राट हर्षवर्धन के समय भारत सांस्कृतिक दृष्टि से अपने शिखर पर था। हिंदू धर्म एवं संस्कृति राष्ट्रव्यापी एकता का आधार था किंतु कालांतर में मुस्लिम आक्रमणकारियों के आगमन से भारत धीरे-धीरे मुस्लिम संस्कृति से भी प्रभावित होता गया। इसका पूरा -पूरा फायदा मुस्लिम संस्कृति के लोग उठाने लगे और उन लोगों ने भारतीय संस्कृति के मूल केंद्रों जैसे मंदिरों, मठों एवं विद्यालयों को नष्ट करने का प्रयास किया। मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव आदिकाल के हिंदू संस्कृति के अनेक क्षेत्रों में पड़ने लगा था या कहना असंगत न होगा कि आदिकालीन भारतीय संस्कृति परंपरा से विच्छिन्न होकर मुस्लिम संस्कृति के गहरे प्रभाव को स्वीकार करती जा रही थी। भारतीय संस्कृति का जो स्वरूप मिलता है वह परंपरागत गौरव से विच्छिन्न तथा मुस्लिम संस्कृति के गहरे प्रभाव से निर्मित है।

2.1.2.3 आदिकाल की राजनीतिक परिस्थिति

▶ विदेशी आक्रमणों से त्रस्त जनता

राजनीतिक दृष्टि से यह युद्ध और अशांति का काल था। सम्राट हर्षवर्धन की मृत्यु के उपरांत उत्तर भारत खंड राज्यों में विभाजित हो गया था। चौहान और चंदेल वंश के राजपूत राजाओं ने अपने-अपने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिए थे। राजपूत राजा निरंतर युद्ध की आग में जलते-जलते अंततः शक्ति क्षीण हो गए थे और विदेशी आक्रमणों से डटकर मुकाबला करने की स्थिति में नहीं थे। भारत के उत्तर पश्चिमी सीमा पर विदेशी आक्रमणों का भय बराबर बना रहता था। 10 वीं शताब्दी में सभी महमूद गजनबी ने और 12 वीं शताब्दी में मोहम्मद गौरी ने भारत को पदाक्रांत किया। जनता विदेशी आक्रमणों से त्रस्त थी ही साथ ही साथ युद्धगामी देसी राजाओं के अत्याचारों को भी सहन करने को विवश थी। धीरे-धीरे समस्त हिन्दी प्रदेश में स्थित राज्यों दिल्ली, कनौज, अजमेर आदि पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। इस प्रकार उचित प्रोत्साहन के अभाव में लोकभाषा के कवियों को काव्य रचना के अनुकूल वातावरण नहीं मिलता था। जो कवि धार्मिक भावना से अनुप्राणित थे वे ही किसी की पर्वाह किए बिना काव्य साधना करते थे। किंतु जो कवि राजाश्रित हो जाते थे, उन्हें अपने राजा को प्रसन्न करने के लिए काव्य रचना करना पडता था। धर्म और राजाश्रय से मुक्त रहकर कविता करनेवाले कवियों की प्रतिभा के विकास के लिए उचित वातावरण नहीं था।

2.1.2.4 आदिकाल की धार्मिक परिस्थिति

आदिकाल में तीन संप्रदायों का विशेष प्रभाव दिखाई देता है- सिद्ध संप्रदाय, नाथ संप्रदाय और जैन संप्रदाय। इस काल में वैदिक और पौराणिक धर्म के विभिन्न रूपों के साथ जैन और बौद्ध धर्म भी अपने वास्तविक आदर्शों से हट गए। बौद्ध धर्म में पर्याप्त परिवर्तन हो चुका था बौद्ध में मूर्ति-पूजा, योग-भक्ति का समावेश होने लगा। कालांतर में तंत्र-मंत्र, जादू-टोना, मांस- मदिरा आदि ने स्थान पा लिया। धर्म के वास्तविक आदर्श इस काल में खत्म हो चुके थे लोग आश्चर्य विहीनता, चमत्कार प्रदर्शन एवं भोग विलास को विशेष महत्व देते थे। सिध्द संप्रदाय निम्न वर्ग की अशिक्षित जनता पर अपना प्रभाव छोड़ने के लिए तंत्र मंत्र, जादू-टोना एवं चमत्कार प्रदर्शन द्वारा अशिक्षित जनता पर अपना प्रभाव जमा रहे थे। इस काल में विभिन्न धर्मों के मूल रूप लुप्त हो चले थे और उनमें अंधविश्वास का समावेश हो गया था। तात्पर्य यह है कि आदिकाल की धार्मिक परिस्थितियाँ अत्यंत विषम तथा असंतुलित थी। जन

अंधविश्वास का प्रभाव

मानस पर गहरा असंतोष, क्षोभ तथा भ्रम छाया हुआ था। कवियों ने इसी मानसिक स्थिति के अनुरूप खंडन-मंडन, हठयोग, वीरता एवं श्रृंगार का साहित्य लिखा।

2.1.2.5 आदिकाल की साहित्यिक परिस्थिति

वीररस प्रधान रचनाएँ

आदिकाल में साहित्य रचना की तीन धाराएँ बह रही थी- परंपरागत संस्कृत साहित्य की रचना-प्राकृत, अपभ्रंश भाषा साहित्य का सृजन जैन कवियाँ कर रहे थे। संस्कृत साहित्य के अंतर्गत पुराणों एवं स्मृतियों पर टीकाएँ लिखी गई, ज्योतिष एवं काव्यशास्त्र पर अनेक मौलिक ग्रंथों की रचना की गई। आनंद वर्धन, मम्मट, एवं श्री हर्ष जैसी प्रतिभाएँ इसी युग की देन है। स्वयंभू, पुष्पदंत, धनपाल, हेमचंद्र जैसे जैन कवियों ने भी जो साहित्य प्रस्तुत किया है वह अपनी मौलिकता एवं साहित्यिता के कारण उच्च कोटि का है। चारण कवियों की सामयिक आवश्यकता पर बल देते हुए कहा गया है उस समय तो जो भट्ट या चारण किसी राजा के पराक्रम विजय की व्याख्या करता था वही सम्मान पाता था।

2.1.3 आदिकालीन साहित्य की विशेषताएँ

राजा, धर्म और लोक के तीन आश्रयों में विभाजित

आदिकालीन साहित्य स्पष्टतः राजा, धर्म और लोक के तीन आश्रयों में विभाजित हो चुका था। इनकी भाषाएँ भी प्रायः निश्चित हो चुकी थी। 'संस्कृत' प्रधानतः राज-प्रवृत्ति को सूचित करती थी, 'अपभ्रंश' धर्म की भाषा बन गयी थी तथा 'हिन्दी' जनता की मानसिक स्थितियों एवं भावनाओं का प्रतिनिधित्व कर रही थी। संस्कृत के कवियों एवं लेखकों को तत्कालीन परिस्थितियाँ अधिक प्रभावित नहीं करती थी। वे काव्य और शास्त्र के विनोद में ही अपनी रचनात्मक प्रतिभा का उपयोग कर रहे थे प्राकृत तथा अपभ्रंश के कवि एवं लेखक धर्म प्रचार में लगे हुए थे, साहित्य तत्व उनकी रचनाओं का सहायक अंग था। केवल हिन्दी ही इस काल की ऐसी भाषा थी जिसमें तत्कालीन परिस्थितियों की प्रतिक्रिया प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में मुखर हो रही थी। आदिकालीन साहित्य की सामान्य विशेषताओं को निम्न रूपों से समझ सकते हैं:-

2.1.3.1 युद्धों का सजीव वर्णन

युद्धों का वास्तविक अनुभूति

रासो ग्रंथों में किये गये युद्ध वर्णन से सजीव प्रतीत होते हैं। इन काव्य ग्रंथों में जहाँ-जहाँ युद्ध वर्णन के प्रसंग है वहाँ-वहाँ ऐसा प्रतीत होता है जैसे कवि युद्ध का आंखों देखा हाल सुना रहा है। चारण कवि कलम की ही नहीं तलवार पर अपने-अपने आश्रयदाता के साथ क्षेत्र में जाकर तलवार भी चलाते थे। युद्ध के दृश्यों को उन्होंने अपने आँखों से देखा था अतः इन युद्ध वर्णनों में जो कुछ भी कहा गया है उनकी अपनी वास्तविक अनुभूति हैं इन कवियों ने केवल सैन्य बल पर ही नहीं अपितु योद्धाओं की उमंग, मनोदशा एवं क्रियाकलापों का सुंदर वर्णन किया है।

2.1.3.2 आश्रयदाताओं की प्रशंसा

रासो ग्रंथों के रचयिता को चारण कहे जाते थे और वे अपने आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा में काव्य रचना करना अपना परम कर्तव्य मानते थे। अपने चरित्र नायक की श्रेष्ठता एवं प्रतिपक्ष राजा की हीनता का वर्णन अतिशयोक्ति में करना इन चारणों की प्रमुख विशेषता थी। दरबारी कवि होने के कारण इन कवियों ने आश्रयदाताओं शौर्य, यश, वैभव का काल्पनिक एवं अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन किया है। पृथ्विराजरासो एवं खुमान रासो इसी कोटि की प्रशंसा परक रचनाएँ हैं। उनका लक्ष्य केवल उसी राज्य या राजा तक ही सीमित रहता था जिसके वे

चरित्र नायक की श्रेष्ठता

आश्रित होते थे। देश की स्थिति एवं भविष्य की ओर उनका ध्यान बिल्कुल नहीं रहता था। जिसके कारण उनके काव्य में राष्ट्रीयता का पूर्ण अभाव रहा।

2.1.3.3 वीर एवं श्रृंगार रस

आदिकाल की अधिकांश रचनाओं में वीररस की अभिव्यक्ति और श्रृंगार रस का संयोग हुआ है। वीरों के साहस, शौर्य, उत्साह, धैर्य, आदि का वर्णन रस की अनुभूति दिलाती है साथ ही श्रृंगार रस की अभिव्यंजना भी स्थान-स्थान पर मिलती है। पृथ्वीराजरासो में ऐसे अनेक मर्मस्पर्शी स्थल है जहाँ वीर रस का पूर्व परिपाक हुआ है। कुछ शौर्य प्रदर्शन के लिए तथा सुंदर राजकुमारियों से विवाह करने के निमित्त लड़े जाते थे। इस कारण श्रृंगार रस के भावपूर्ण वर्णनों का समावेश भी इन काव्य ग्रंथों में हो गया है। राजकुमारियों की सौंदर्य अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन नासिक परिपाटी पर किया गया है। वीरगाथात्मकता इस काल की प्रधान प्रवृत्ति है। वीरता एवं श्रृंगारिकता का अद्‌भुत मेल इस काल की उल्लेखनीय विशेषता है। यह अधिकांशतः रासो काव्य के अंतर्गत मिलती है।

पूर्व परिपाक वीर रस

2.1.3.4 'रासो' ग्रंथों की प्रचुरता

इस युग में रची गयी रचनाओं में से अधिकांश के साथ 'रासो' शब्द जुडा है। इसी कारण इन ग्रंथो को 'रासो' काव्य कहा जाता है। जैसे पृथ्वीराजरासो, बीसलदेवरासो, खुमाणरासो, परमालरासो।

2.1.3.5 भाषा

इस काल में प्रायः पाँच भाषाओं की रचनाएँ प्राप्त होती है, अपभ्रंश, डिंगल, खडीबोली, ब्रज भाषा तथा मैथिली। अपभ्रंश का प्राचीन रूप सिद्धों, तांत्रिकों तथा योगमार्गी बौद्धों की रचनाओं में मिलता है और कुछ जैन आचार्यों ने भी अपभ्रंश में उच्चकोटी के साथ लिखे हैं। प्रायः रासो साहित्य डिंगल साहित्य से अव्यवस्थित है। क्योंकि उनका शुद्ध रूप प्राप्त नहीं होता। खडीबोली भाषा का प्रयोग अमीर खुसरों की रचनाओं में प्राप्त होता है। और मैथिली भाषा का प्रयोग विद्यापति ने अपनी पदावली में प्रचुर मात्रा में किया। इस काल की रचित प्रायः सभी रचनाएँ डिंगल भाषा में है। डिंगल राजस्थान की साहित्यिक भाषा है। प्राय: ये सभी रचनाएँ राजस्थान में रचि गयी। इसीलिए डिंगल भाषा में इनका लिखा जाना स्वाभाविक है।

पाँच भाषाओं की रचनाएँ

2.1.3.6 राष्ट्रीय भावना

आदिकाल में राष्ट्रीयता की भावना अत्यन्त संकुचित थी। सौ पचास गांवों के साथ अपने राज्य को राष्ट्र समझने वाले राजाओं का अभाव नहीं था। समूचे भारत को नहीं, बल्कि राज्य विशेष को ही राष्ट्र मान लिया जाता था। चारण कवि जीविका के प्राप्ती हेतु अपने आश्रयदाता की झूठी प्रशंसा किया करता था। राजाओं का परस्पर संघर्ष ही राष्ट्रीय भावना के अभाव का द्योतक है।

आश्रयदाता की झूठी प्रशंसा

2.1.3.7 ऐतिहासिकता का अभाव

वीरगाथाकाल की रचनाओं में ऐतिहासिकता का अभाव है। जो रचनाएँ प्राप्त है, वे अधिकांश संदिग्ध है। अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न रखने के लिए चारण काव्यों ने ऐतिहासिक तथ्यों की अवहेलना की है। कल्पना को अधिक प्रश्रय देने के कारण ही ऐतिहासिकता की और कवियों की दृष्टि विशेष रूप से नहीं रही। कवियों ने अपनी रूचि और आवश्यकता के अनुकूल स्थान-स्थान पर परिवर्तन कर दिया है। जिससे ऐतिहासिक सत्य को

क्षति पहुँची है। वस्तुतः उनकी दृष्टि केवल घटना विशेष का चमत्कारपूर्ण वर्णन करने में ही केन्द्रित रहा है और उनका दृष्टिकोण इतना संकीर्ण है कि उन्होंने इतिहास के सत्य को अक्सर झुठलाने की कोशिश की है।

▶ इतिहास के सत्य को झुठलाने की कोशिश

2.1.3.8 जन जीवन के चित्रण का अभाव

चारण कवि अपने आश्रय दाताओं के गुण-गान मैं तल्लीन रहते थे । उन्हें जन-जीवन से कोई संबंध नहीं था। सामंती जीवन के वैभव-विरास का चित्रण करना, उनकी समस्याओं एवं उनके द्वारा किए गए युद्धों आदि का चित्रण करना ही उनका मुख्य लक्ष्य था। जन-जीवन से उनकी संबंध कटा हुआ था। अतः इस काल के काव्य में जन-जीवन की समस्याऐं चित्रित नहीं हो पायी।

▶ जन-जीवन से कटा हुआ

2.1.3.9 प्रकृति चित्रण

प्रकृति का चित्रण अलम्बन और उद्दीपन दोनों रूपों में किया गया है। युद्ध क्षेत्र में जाते हुए सैनिकों का वर्णन करते समय रास्ते में पडने वाले नगर, नदि, पर्वत आदि का वर्णन कवियों ने जमकर किया है। प्रकृति का चित्रण विशेषकर उद्दीपन रूप में ही हो पाया है। प्रकृति के स्वतंत्र या आलंबन रूप के चित्रण में कवियों ने अधिक रूचि नहीं दिखाई। प्रकृति चित्रण के नाम पर वस्तुओं की घटना ही अधिक मिलती है।

▶ प्रकृति के आलंबन रूप

2.1.3.10 प्रामाणिकता का अभाव

आदिकाल के अधिकांश रासो काव्य तथा कवियों की प्रामाणिकता में अभाव है। पृथ्वीराजरासो जो इस काल के प्रमुख रचना है वे भी पूर्ण रूप से प्रामाणिक नहीं है इसी प्रकार खुमान रासो और परमाल रासो की प्रामाणिकता में भी संदेह है। रासो काव्य समय-समय पर परिवर्तित एवं परिवर्धित होते रहे हैं। इन अलग-अलग संस्करणों के आने से यह प्रश्न सहज रूप में उत्पन्न हो जाता है कि इनमें से प्रामाणिक संस्करण कौन सा है। विद्वानों में भी इस विषय को लेकर कई वर्ग बन गए हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'पृथ्वीराजरासो' सर्वाधिक विवादास्पदक ग्रंथ बन गया है।

▶ रासो काव्य और कवियों की प्रामाणिकता

2.1.3.11 अनेक छंदों का प्रयोग

रासो ग्रंथों में भी छंदों की विविधता परिलक्षित होती है। छंदों की यह विविधता हिन्दी के न तो परवर्ती साहित्य में मिलती हैं पूर्ववर्ती साहित्य में। पृथ्वीराजरासो में अनेक छंदों का प्रयोग हुआ है। दोहा, गाथा, रोला, उल्लाला, कुंडलियां आदि। यह छंद परिवर्तन मात्र कलात्मक या चमत्कार प्रदर्शन के लिए न होकर भाव प्रकाशन के लिए किया गया है। परमालरासो, खुमानरासो तथा अन्य रचनाओं में भी छंदों का वैविध्य देखा जा सकता है।

▶ भाव प्रकाशन केलिए छंदों का प्रयोग

2.1.3.12 अलंकारों का समावेश

आदिकाल में अलंकारों का समावेश हुआ है। चारण कवियों ने अपने काव्य में अलंकारों का सहारा लिया है। उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा का हृदयग्राहि चित्रण इन काव्यों में मिलता है। सुंदर चित्रण में उत्प्रेक्षाओं से काम लिया गया है। यद्यपि रासो की विशाल ग्रंथ में प्रायः सभी अलंकार खोजने से प्राप्त हो जाते हैं। तथापि अनुप्रास, वक्रोक्ति, यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति जैसे अलंकारों की प्रधानता रही है। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कोई भी अलंकार ऐसा नहीं जो उनमें से कोई भी छंद ऐसा नहीं जो उसका साथ ना देता हो।

▶ उत्प्रेक्षाओं से युक्त काव्य

2.1.3.13 प्रबंध एवं मुक्तक रचनाएँ

इस काल में जहाँ एक ओर पृथ्विराजरासो जैसे प्रबंध काव्य की रचना हुई है वहीं दूसरी ओर संदेश रासक जैसे मुक्तक गीतों की भी रचना हो गई है। इस प्रकार आदिकाल में प्रबंध एवं मुक्तक दोनों प्रकार की रचनाएँ देखने को मिलती है।

इस प्रकार आदिकालीन काव्य अपनी विशेषताओं के कारण महत्वपूर्ण है। आदिकालीन साहित्य में एक साथ कई परंपराओं का उदय दिखाई देता है। समाज के विभिन्न स्थितियों पर दृष्टिपात करके सहज जीवन का मार्ग सुलझाने से लेकर हठ्योग की साधना तक आदिकाल में मुक्तक काव्य का जो विस्तार हुआ निश्चय ही उसका पर्याप्त ऐतिहासिक महत्व है। वीरगाथा काल का विषय, प्रधान रूप से राजाओं का यशोगान था। आदिकाल के कवियों ने उपयुक्त विषयों को ध्यान में रखते हुए अपनी रचनाएँ की है। वीरगाथाकालीन रचनाओं का महत्त्व साहित्यिक सौंदर्य की दृष्टि से बहुत नहीं है। इनका महत्व विशेष रूप से भाव विकास के अध्ययन की दृष्टि से है। इनसे हमारे साहित्य के मूल रूप को समझने में सहायता मिलती है।

▶ राजाओं का यशोगान

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

हिन्दी साहित्य का प्रारंभिक काल जिसे आदिकाल, वीरगाथा काल, चारण काल, सिद्ध सामंतकाल आदि अनेक संज्ञाओं से विभूषित किया गया है। यह हिन्दी का सबसे अधिक विवादग्रस्त काल है। शायद ही भारत के साहित्य के इतिहास में इतने विरोधाभास का युग कभी नहीं आया होगा। आदिकाल में एक तरफ तो संस्कृत के ऐसे बड़े-बड़े कवि उत्पन्न हुए जिनकी रचनाएँ अलंकृत काव्य परम्परा की चरम सीमा पर पहुंच गई थीं और दूसरी ओर अपभंश के कवि हुए जो अत्यंत संक्षिप्त शब्दों में अपने मार्मिक भाव प्रकट करते थे।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. हिन्दी साहित्य के आदिकाल पर आलेख तैयार कीजिए।
2. आदिकाल के सीमांकन पर टिप्पणी तैयार कीजिए।
3. आदिकाल नामकरण पर आपकी मत प्रकट कीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी भाषा की संरचना - डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
2. हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. भोलानाथ तिवारी
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

इकाई : 2

आदिकाल-नामकरण की समस्या, प्रामाणिकता की समस्या

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- आदिकाल के विभिन्न नामों से परिचित होता है
- आदिकाल नामकरण की समस्याओं से अवगत होता है
- नामकरण की प्रामाणिकता की समस्या से अवगत होता है

Background / पृष्ठभूमि

हिन्दी साहित्य के इतिहास के विवादास्पद प्रसंगों में एक हिन्दी साहित्य के आदिकाल का भी प्रसंग रहा है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के अनेक विद्वानों ने इस संबध में अपने-अपने मत प्रस्तुत किए हैं। हिन्दी साहित्य के विधिवत इतिहास लेखन से पूर्व 'भक्तमाल', 'चैरासी वैष्णवन की वार्ता', 'दो सौ वैष्णव की वार्ता' आदि कतिपय कविवत संग्रह लिखे गए जिनमें काल-विभाजन और नामकरण पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया। कुछ विद्वान इसे वीरगाथात्मक रचनाओं की प्रधानता के कारण इसे 'वीरगाथाकाल' कहने के पक्ष में है, लेकिन सिद्धों और नाथों की रचनाएँ इस परिधि में नहीं आ सकती। अतः 'वीरगाथाकाल' न कहकर कुछ ने इसे 'आदिकाल' कहा है, तो किसी ने 'बीजवपन काल'।

Keywords / मुख्य बिन्दु

भक्तमाल, नामकरण की खोज, इतिहास लेखन, फुटकर रचनाएँ

Discussion / चर्चा

आदिकाल की अनेक समस्याओं में से सर्वप्रथम तो उसके नामकरण की है। इस समस्या के समाधान में अनेक विद्वानों ने योग दिया। लेकिन समस्या स्वयं हल नहीं हो पायी बल्कि कई नवीन समस्याओं का जन्म हुआ। नामकरण की समस्या के कारण इस काल की सीमा निर्धारण सम्बन्धी, उपलब्ध सामग्री सम्बन्धी और नामकरण और प्रवृत्तियों सम्बन्धी अनेक समस्याएँ उठ खड़ी हुई। यह कहना अधिक उचित प्रतीत होता है कि साहित्य का यह काल अनेक प्रकार से विवादग्रस्त होते हुए भी एक बात में स्पष्टता लिए हुए है कि इसमें नाथों, सिद्धों, जैनों और रासोकारों का साहित्य सम्मिलित है और विशिष्ट महत्व रखता है।

2.2.1 आदिकाल-नामकरण की समस्या

हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक युग के सम्बन्ध में जो नाम प्रस्तावित किये गये हैं वे इस

प्रकार हैं-

2.2.1.1 वीरगाथाकाल

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रारम्भिक युग के साहित्य को दो कोटियों-अपभ्रंश और देशभाषा में बाँटा है। उनके मत में सिद्धों और योगियों की रचनाओं का जीवन की स्वाभाविक सरणियों, अनुभूतियों और दशाओं से कोई संबंध नहीं, वे साम्प्रदायिक शिक्षा मात्र हैं। अतः शुद्ध साहित्य की कोटि में नहीं आती और जो साहित्य की कोटि में गिनी जा सकी हैं वे कुछ फुटकर रचनाएँ हैं, जिनसे कोई विशेष प्रवृत्ति स्पष्ट नहीं होती है। उनके मत में तत्कालीन साहित्यिक रचनाओं में से केवल 'खुसरो की पहेलियाँ', 'विद्यापति की पदावली' तथा 'बीसलदेव रासो' को छोड़कर सभी रचनाएँ वीरगाथात्मक हैं। इस युग में राजाश्रित कवि अपने आश्रयदाता राजा की वीरता का यशोगान तथा उन्हें युद्धों के लिए उकसाने का काम करते थे। इसलिए उन रचनाओं को राजकीय पुस्तकालयों में रखा जाता था। लेकिन बाद में साहित्य संबंधी जो खोज की गई उसके अनुसार शुक्ल ने जिन रचनाओं के आधार पर इस काल का नाम 'वीरगाथाकाल' रखा है।

▶ वीररस की प्रधानता

2.2.1.2 अपभ्रंश काल

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और धीरेन्द्र वर्मा ने हिन्दी साहित्य के आदिकाल को 'अपभ्रंश काल'की संज्ञा दी है। आदिकाल के साहित्य में अपभ्रंश भाषा की प्रधानता स्वीकारते हुए उन्होंने इस काल को 'अपभ्रंश काल' कहना अधिक समीचीन समझा है। भाषा के आधार पर साहित्य के इतिहास में काल-विभाजन उपर्युक्त प्रतीत नहीं होता। साहित्य के किसी भी काल का नामकरण उस काल की साहित्यिक प्रवृत्तियों अथवा प्रतिपाद्य विषय के आधार पर उचित समझा जाता है। 'अपभ्रंश काल' यह नाम भ्रामक भी सिद्ध होता है क्योंकि इसमें श्रोता या पाठक का ध्यान हिन्दी साहित्य की ओर न जाकर अपभ्रंश साहित्य की ओर आकृष्ट होता है। भाषा-शास्त्र की दृष्टि से भी अपभ्रंश और हिन्दी दो अलग-अलग भाषाएँ है। इसलिए पुरानी हिन्दी को अपभ्रंश कहना भी उचित नहीं है।

▶ अपभ्रंश भाषा की प्रधानता

2.2.1.3 संधिकाल और चारण काल

डॉ. रामकुमार वर्मा ने हिन्दी साहित्य के इस प्रारंभिक काल को 'संधिकाल' और 'चारणकाल' इन दो नामों से अभिहित किया है। उनकी सम्मति में हिन्दी भाषा का विकास अपभ्रंश से हुआ है, किन्तु अपभ्रंश से एक पृथक भाषा के रूप में विकसित होने से पूर्व हिन्दी भाषा एक ऐसी स्थिति में भी रहीं होगी जिसमें वह अपभ्रंश के प्रभावों से सर्वथा मुक्त न हो सकी होगी। अपभ्रंश भाषा के अंत और हिन्दी भाषा के आरम्भ की इस स्थिति को स्पष्ट करने के लिए डॉ. वर्मा ने 'संधिकाल' की कल्पना की है। हिन्दी साहित्य के जिस काल को आचार्य शुक्ल ने 'वीरगाथाकाल' कहा है, वहीं पर डॉ. वर्मा उसे 'चारण काल' कहना उपर्युक्त समझते हैं। 'चारणकाल' नामकरण एक वर्ग विशेष का बोध कराता है। वीरगाथाओं के रचयिता राजश्रित चारण थे। अतः उस काल का नामकरण 'चारणकाल' किया गया।

▶ अपभ्रंश के अंत और हिन्दी के आरंभ

2.2.1.4 सिद्ध सामन्त काल

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने इस युग के लिए 'सिद्ध सामन्त युग' नाम प्रेषित किया है। यह नाम केवल दो वर्गों की ओर संकेत करता है। सिद्ध स्वयं रचनाकार थे जब कि सामंत रचना प्रेरक थे। प्रस्तुत नामकरण बहुत दूर तक तत्कालीन साहित्यिक प्रवृत्ति को स्पष्ट करता है। इस काल के साहित्य में सिद्धों द्वारा लिखा गया धार्मिक साहित्य ही प्रधान है। सामन्तकाल में 'सामन्त' शब्द से उस समय की राजनैतिक स्थिति का पता चलता है। यह

सिद्धों द्वारा धार्मिक साहित्य

नाम भी अधिक प्रचलित नहीं हो सका। इस नाम से जैन साहित्य तथा लौकिक साहित्य का बोध नही होता। इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'सिद्ध सामंत युग' नाम भी साहित्य के लिए उपर्युक्त नाम नहीं है।

2.2.1.5 बीजवपन काल

नवीन प्रवृत्तियों का आरंभ

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इसे 'बीजवपन काल' कहा है। भाषा की दृष्टि से हम इस काल के साहित्य में हिन्दी के आदि रूप का बोध पा सकते हैं तो भाव की दृष्टि से इस में भक्ति काल से आधुनिक काल तक की सभी प्रमुख प्रवृत्तियों के आदिम बीज खोज सकते हैं। तत्कालीन साहित्य को देखकर यह नाम भी युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता, क्योंकि उसमें पूर्ववर्ती सभी काव्य रूढ़ियों तथा परम्पराओं का सफलतापूर्वक निर्वाह हुआ है और उसके साथ कुछ नवीन प्रवृत्तियों का जन्म हुआ है।

2.2.1.6 आदिकाल

सर्व प्रचलित नामकरण- आदिकाल

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसका नाम 'आदिकाल' सुझाया है। आदिकाल ही ऐसा नाम है जिसे किसी न किसी रूप में सभी इतिहासकारों ने स्वीकार किया है। तथा जिससे हिन्दी साहित्य के इतिहास की भाषा, भाव, विचार, शिल्प आदि से संबद्ध सभी गुत्थियाँ सुलझ जाती है। इस नाम से उस व्यापक पृष्ठभूमि का बोध होता है। जिस पर आगे का साहित्य खडा है। भाषा की दृष्टि से हम इस काल के साहित्य में हिन्दी के आदि रूप का बोध पा सकते हैं तो भाव की दृष्टि से इस में भक्ति काल से आधुनिक काल तक की सभी प्रमुख प्रवृत्तियों के आदिम बीज खोज सकते हैं। जहाँ तक रचना शैलियों का प्रश्न है उनके सभी रूप जो परवर्ती काव्य में प्रयुक्त हुए, अपने आदि रूप में मिल जाते हैं। इस काल के श्रृंगारिक तथा वीरता की प्रवृत्तियों का ही विकसित रूप परवर्ती साहित्य में मिलता है। अतः आदिकाल ही सबसे अधिक उपर्युक्त एवं व्यापक नाम है।

2.2.2 प्रामाणिकता की समस्या

वीररस प्रधान रचनाएँ

हिन्दी साहित्य का 'आदिकाल' सबसे अधिक विवादों का काल है। इस काल की रचनाओं की प्रामाणिकता का निर्णय एक बड़ी समस्या है। इस अवधि में रचित वीर रस प्रधान रासो काव्य ग्रंथों का महत्वपूर्ण स्थान है। रासो साहित्य पर विचार करते हुए एक ही प्रश्न प्रमुख रूप से उठता है– उनकी प्रामाणिकता के संदर्भ में। आदिकाल के अधिकांश रासो कवियों की प्रामाणिकता संदिग्ध है। पृथ्वीराजरासो जो इस काल की प्रमुख रचना बताई गई है वो भी अप्रामाणिक बताई गई है। पृथ्विराजरासो में दिए गए अनेक नाम तथा घटनाऐं इतिहास सम्मत नहीं है। रासो में परमार, चालुक्य और चौहान, क्षत्रीय अग्निवंशी माने गए हैं, जबकि प्राचीन ग्रंथों और शिलालेखों के आधार पर ये सूर्यवंशी प्रमाणित होते हैं। पृथ्विराजरासो में दी गई तिथियाँ तथा संवत् भी अशुद्ध हैं। इसी प्रकार 'खुमान रासो' और 'परमालरासो' की प्रामाणिकता में भी संदेह है। 'खुमानरासो' का रचनाकाल 1760 के बाद का सिद्ध हो चुका है। 'परमालरासो' एवं 'खुसरो की पहेलियाँ' भाषा एवं रचनाकाल की दृष्टि से अप्रामाणिक एवं परवर्ती सिद्ध होती हैं। 'विद्यापति पदावली' का रचनाकाल आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने वि सं 1460 माना है। अतः यह भक्ति काल की रचना सिद्ध होती है। स्वयं आचार्य शुक्ल ने जिन रचनाओं को आधार मानकर 'वीरगाथा काल' की नींव रखी वे स्वयं अप्रामाणिक साबित हो चुकी हैं।

विवादास्पद कृतियाँ

आदिकालीन साहित्य और मध्यकालीन साहित्य में रचनाओं की भाषा और विषय वस्तु के संदर्भ में विवाद उभरते रहे हैं। वाचिक और मौखिक परंपरा के कारण विषय वस्तु और भाषा में परिवर्तन होता रहा है। इस विवाद के बाद भी उन्हें साहित्य में स्थान दिया जाता रहा है। प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता के गहरे विवाद के बाद भी उन्हें साहित्य से अलग हटाना उचित नहीं है। यदि प्रामाणिकता को आधार बनाकर साहित्य की समीक्षा की गई तो ऐसा भी हो सकता है कि आदिकाल में साहित्य ही उपलब्ध नहीं होगा। क्योंकि इस काल की सभी कृतियों पर कुछ न कुछ विवाद है।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

हिन्दी साहित्य के इतिहास का प्रथम काल का नामकरण विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से किया है। जैसे वीरगाथाकाल, अपभ्रंशकाल, सन्धिकाल, चारणकाल, सिद्ध सामंतकाल, बीजवपनकाल और आदिकाल। इन नामों में आदिकाल नाम ही योग्य व सार्थक है, क्योंकि इस नाम से उस व्यापक पृष्ठभूमि का बोध होता है, जिस पर परवर्ती साहित्य खड़ा है। भाषा की दृष्टि से इस काल के साहित्य में हिन्दी के प्रारंभिक रूप का पता चलता है तो भाव की दृष्टि से भक्तिकाल से लेकर आधुनिक काल तक की सभी प्रमुख प्रवृत्तियों के आदिम बीज इसमें खोजे जा सकते हैं। इस काल की रचना-शैलियों के मुख्य रूप इसके बाद के कालों में मिलते हैं। आदिकाल की आध्यात्मिक, श्रृंगारिक तथा वीरता की प्रवृत्तियों का ही विकसित रूप परवर्ती साहित्य में मिलता है। इस कारण आदिकाल नाम ही अधिक उपयुक्त तथा व्यापक माना जाता है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. आदिकाल के विभिन्न नामों का परिचय दीजिए।
2. आदिकाल के नामकरण की समस्याओं पर प्रकाश डालिए।
3. आदिकाल की नामकरण की समस्या पर टिप्पणी लिखिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी भाषा की संरचना - डॉ. भोलानाथ तिवारी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
2. हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. भोलानाथ तिवारी
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ.नगेन्द्र
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

इकाई : 3

अपभ्रंश साहित्यः प्रमुख कवि, जैन साहित्य, सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- अपभ्रंश साहित्य और उसके प्रमुख कवियों से परिचित होता है
- सिद्ध साहित्य का परिचय प्राप्त करता है
- नाथ साहित्य से अवगत होता है
- जैन साहित्य से परिचय प्राप्त करता है

Background / पृष्ठभूमि

आदिकाल में हिन्दी साहित्य के समानांतर संस्कृत और अपभ्रंश साहित्य की भी रचना हो रही थी। इनमें से संस्कृत साहित्य का जो सामान्य जनता तथा हिन्दी कवियों पर उतना प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पडता था, किंतु अपभ्रंश साहित्य भाषा की निकटता के कारण हिन्दी साहित्य के लिए निरंतर साथ चलनेवाली पृष्ठभूमि का काम कर रहा था। इसी के परिणाम स्वरूप विद्वानों का ध्यान अपभ्रंश साहित्य की ओर आकृष्ट हुआ।

Keywords / मुख्य बिन्दु

स्वर्णयुग, आर्यभाषा, प्राकृत, हठयोग

Discussion / चर्चा

अपभ्रंश भाषा और उसके साहित्य का आविर्भाव छठी शती में होता है। यह संस्कृत शब्द अपभ्रंश से लिया गया है, जिसका अर्थ है 'भ्रष्ट' या 'गैर-व्याकरणिक भाषा'। इस शब्द का प्रयोग व्याकरण के बिना सभी स्थानीय बोलियों को संदर्भित करने के लिए किया गया था। प्राकृत ने अपभ्रंश में व्याकरण जोड़ा और धीरे-धीरे अपभ्रंश साहित्यिक स्तर पर पहुँच गया। इस भाषा का सबसे प्राचीन रूप सिद्धों,तांत्रिकों,तथा योगमार्गी बौद्धों की रचनाओं में मिलता है। छठी से चौदहवीं शती तक अपभ्रंश साहित्य का युग था। इसमें आठवीं से बारहवीं शती तक अपभ्रंश साहित्य का स्वर्णयुग कहा जा सकता है।

2.3.1 अपभ्रंश साहित्य एवं प्रमुख कवि

आदिकाल में हिन्दी साहित्य के समानांतर संस्कृत और अपभ्रंश साहित्य की भी रचना हो

रही थी। इनमें से संस्कृत साहित्य का समान्य जनता तथा हिन्दी कवियों पर उतना प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ा। लेकिन अपभ्रंश साहित्य भाषा की निकटता के कारण हिन्दी साहित्य के लिए निरंतर साथ चलनेवाली पृष्ठभूमि का काम कर रहा था। अपभ्रंश, आधुनिक भाषाओं के उदय से पहले उत्तर भारत में बोलचाल और साहित्य रचना की सबसे जीवन्त और प्रमुख भाषा रही है। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से अपभ्रंश भारतीय आर्यभाषा के मध्यकाल की अंतिम अवस्था है जो प्राकृत और आधुनिक भाषाओं के बीच की स्थिति है। अपभ्रंश साहित्य को साधारणतया छः भागों में विभाजित किया जा सकता है, जैन साहित्य,सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य, लौकिक साहित्य, रासो साहित्य और गद्य रचनाएँ। सरहपा, स्वयंभू, जोइन्दु, रामसिंह, पुष्पदंत, धनपाल, कनकामर, अब्दुलरहमान, गोरखानाथ, हेमचंद्र, सोमप्रभ, विद्यापति, कण्हपा, मेरुतुंग, लुइपा, शबरपा, कुक्कुरिपा, श्रावकाचार, देवसेन, कृष्णाचार्य, महीधर, शालीभद्र सूरि, गोपीचंद आदि इस भाषा के प्रमुख कवि हैं।

▶ जीवंत एवं प्रमुख भाषा

2.3.2 जैन साहित्य

हिन्दी साहित्य की उत्पत्ति और विकास में जैन धर्म का बहुत योगदान रहा है। हिन्दी के प्रारंभिक रूप का सूत्रपात करने में भी जैन धर्म का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जैनों का क्षेत्र पश्चिमी भारत रहा है। पश्चिमि क्षेत्र में जैन साधुओं ने अपने मत का प्रचार हिन्दी कविता के सहारे किया। इन कवियों की रचनाएँ आचार, राम, फागु चरित आदि विभिन्न शैलियों में मिलती है। आचार शैली के जैन कवियों में घटनाओं के स्थान पर उपदेशात्मकता को प्रधानता दी गयी। जैनों में स्वयंभू, पुष्पदंत, हेमचंद्र सूरी, मुनि रामसिंह, जोइदु, धनपाल, मेरुतुंग, सोमप्रभ सूरि, शालिभद्र सूरि, आसागु, जिनधर्म सूरि, सुमितगण एवं विजयसेन सूरि आदि प्रमुख हैं।

▶ उपदेशात्मकता की प्रधानता

2.3.3 सिद्ध साहित्य

सिद्धों ने बौद्ध धर्म के वज्रयान तत्व का प्रचार करने के लिए जो साहित्य जनभाषा में लिखा, वह हिन्दी के सिद्ध साहित्य की सीमा में आता है। सिद्धों का क्षेत्र पूर्वी भारत रहा है। पूर्वी क्षेत्र इतिहास में आरंभ से ही प्रतिक्रया का क्षेत्र रहा है। इस क्षेत्र में बौद्ध एवं जैन धर्म के आंदोलन का आविर्भाव हुआ है। राहुल सांकृत्यायन के अनुसार चौरासी सिद्धों में सरहपा से सिद्ध साहित्य का आरंभ माना जाता है। सिद्धों की संख्या 84 है। सिद्ध साहित्य बिहार से लेकर असम तक फैला था। बिहार के नालंदा एवं तक्षशिला विद्यापीठ इनके मुख्य स्थान माने जाते हैं। सिद्धों में सरहपा, शबरपा, लुइपा, डोम्भिपा, कण्हपा एवं कुक्कुरिपा आदि प्रमुख हैं।

▶ हिन्दी साहित्य के आदिधारा

2.3.4 नाथ साहित्य

सिद्ध साहित्य की प्रतिक्रिया स्वरूप नाथ साहित्य का आविर्भाव हुआ। सिद्धों में धर्म के नाम पर वामाचार फैल गया। फलस्वरूप नाथ पंथ का उदय हुआ। ये लोग शिव के उपासक थे और शिव को ही आदिनाथ मानते थे। एक प्रकार से ये लोग अद्वैतवादी है और ये जीवात्मा और परमात्मा दोनों की अद्वैतता में विश्वास करते हैं। अपनी साधना में इनके यहाँ हठयोग पर विशेष बल दिया गया और इसलिए इन्हें 'हठयोगी' भी कहते हैं। हठयोगियों के अनुसार 'ह' का अर्थ है – 'सूर्य' तथा 'ठ' का अर्थ है 'चन्द्र'। इन दोनों के योग को ही 'हठयोग' कहते हैं। हठयोगी साधना द्वारा शरीर और मन को भ्रम करके शून्य में समाधि लगाता था और वहीं ब्रह्म का साक्षात्कार करता था। मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ को नाथ साहित्य के प्रवर्तक

▶ शिव के उपासक

माने जाते हैं। गोरखनाथ नाथ साहित्य के आरंभ कर्ता माने जाते हैं। वे सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य थे। नाथों की संख्या नौ है। नाथों में जालंधरनाथ, चौरंगीनाथ, चर्पटनाथ, गोपीचंद और भर्तृनाथ आदि प्रमुख हैं।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

अपभ्रंश साहित्य के अनेक ग्रंथों का साहित्यिक दृष्टि से कोई महत्व हो या न हो, किन्तु भाषा–विज्ञान की दृष्टि से इनकी उपादेयता कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। अतः भारत खंड में चिरकाल से भारतीय साहित्य की धारा जो अविच्छिन्न गति से प्रवाहित होती चली आ रही है वह संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के अनन्तर आज हिन्दी साहित्य के रूप में हमें दिखाई देती है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. अपभ्रंश साहित्य और उसके प्रमुख कवियों का परिचय दीजिए।
2. अपभ्रंश से हिन्दी तक के यात्रा को व्यक्त कीजिए।
3. सिद्ध साहित्य पर टिप्पणी तैयार कीजिए।
4. नाथ साहित्य का परिचय।
5. जैन साहित्य को स्पष्ट कीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी भाषा की संरचना - डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी साहित्य का आदिकाल - आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी
3. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
5. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
2. हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. भोलानाथ तिवारी
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

इकाई : 4

रासो काव्य परंपरा, प्रमुख प्रवृत्तियाँ- प्रमुख कवि (चंदबरदाई, जगनिक, अमीर खुसरो, विद्यापति) लौकिक साहित्य, गद्य रचनाएँ

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- रासो काव्य परंपरा से अवगत होता है
- रासो साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों से परिचित होता है
- रासो साहित्य के प्रमुख कवियों से अवगत होता है
- लौकिक साहित्य से परिचित होता है

Background / पृष्ठभूमि

आदिकाल के हिन्दी-साहित्य में वीर गाथाऐं प्रमुख हैं। वीर गाथाओं के रूप में ही 'रासो' ग्रन्थों की रचनायें हुई हैं। आदिकाल में जैन कवियों ने जिस 'रास काव्य' की रचना की है वह वीर रस प्रधान 'रासो काव्य' से भिन्न है अतः हम यहाँ उन्हीं रासो ग्रंथों का उल्लेख करेंगे जो वीर रस प्रधान है। और जिनकी रचना चारण कवियों ने की है। रास काव्य उन रचनाओं को कहा जाता है जिनमें रास छंद की प्रधानता रहती थी आगे चलकर रास काव्य ऐसी रचनाओं को कहने लगे जिनमें किसी भी गेय छंद का प्रयोग किया गया हो।

Keywords / मुख्य बिन्दु

पृथ्वीराजरासो, बीसलदेवरासो, खुमाणरासो, हम्मीररासो, परमालरासो

Discussion / चर्चा

'रासो काव्य परम्परा' हिन्दी साहित्य की एक विशिष्ट काव्यधारा रही है, जो वीरगाथा काल में उत्पन्न होकर मध्य युग तक चली आई। कहना यों चाहिए कि आदि काल में जन्म लेने वाली इस विधा को मध्यकाल में विशेष पोषण मिला। 'पृथ्विराजरासो' से प्रारम्भ होने वाली यह काव्य विधा देशी राज्यों में भी मिलती है।

2.4.1 रासो काव्य परंपरा

रासो काव्य परम्परा हिन्दी साहित्य की एक विशिष्ट काव्यधारा रही है, जो वीरगाथा काल

में उत्पन्न होकर मध्य युग तक चली आई। अतः कहना होगा कि आदिकाल में जन्म लेने वाली इस विधा को मध्यकाल में विशेष पोषण मिला। 'पृथ्वीराजरासो' से प्रारम्भ होने वाली यह काव्य विधा देशी राज्यों में भी मिलती है। तत्कालीन कविगण अपने आश्रयदाताओं को युद्ध की प्रेरणा देने के लिए उनके बल पौरुष आदि का अतिरंजित वर्णन इन रासो काव्यों में करते रहे हैं।

▶ विशिष्ट काव्यधारा

रासो काव्य परम्परा में सर्वप्रथम ग्रन्थ 'पृथ्विराजरासो' माना जाता है। संस्कृत, जैन और बौद्ध साहित्य में 'रास', 'रासक' नाम की अनेक रचनायें लिखी गईं। गुर्जर एवं राजस्थानी साहित्य में तो इसकी एक लम्बी परम्परा पाई जाती है। यह निर्विवाद सत्य है कि रासो परम्परा दो रूपों में मिलती है-प्रबन्ध काव्य और वीरगीत। प्रबन्ध काव्य में 'पृथ्वीराजरासो' तथा वीर गीत के रूप में 'बीसलदेवरासो' जैसी रचनायें हैं। जगनिक का रासो अपने मूल रूप में तो अप्राप्य है किन्तु, 'आल्हाखण्ड' नाम की वीर रस रचना उसी का परिवर्तित रूप है। आल्हा, ऊदल एवं पृथ्वीराज की लड़ाइयों से सम्बन्धित वीर गीतों की यह रचना हिन्दी भाषा क्षेत्र के जनमानस में गूंज रही है। आदिकाल की प्रमुख रचनायें पृथ्वीराजरासो, खुमाणरासो एवं वीसलदेवरासो हैं। हिन्दी साहित्य के प्रारम्भ काल की ये रचनायें वीर रस एवं श्रृंगार रस का मिला-जुला रूप प्रस्तुत करती हैं।

▶ प्रबन्धकाव्य और वीरगीत

2.4.2 प्रमुख प्रवृत्तियाँ

रासो काव्य आदिकालीन कविता की मुख्य धारा है। इनमें वीरता एवं श्रृंगार प्रधान दोनों प्रवृत्तियों का चित्रण किया गया है। इस युग के महत्वपूर्ण रासो काव्यों में पृथ्विराजरासो, खुमाणरासो, बीसलदेवरासो, परमालरासो प्रमुख हैं। रासो काव्यों के लेखक राजाओं की वीरता की प्रशंसा राज्य दरबार में रहकर करते थे तथा अपने काव्य के माध्यम से उन्हें प्रेरित किया करते थे।

2.4.2.1 वीर रस एवं श्रृंगार रस की प्रधानता

इन काव्य में वीर रस एवं श्रृंगार रस का विशद चित्रण किया गया है। वीरता एवं श्रृंगार आदिकालीन कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ है। जहाँ युद्ध का कारण नायिकाओं की सुन्दरता भी होती थी। 'पृथ्वीराजरासो' में वीरता एवं श्रृंगार दोनों प्रकार के पद्य देखने को मिलते हैं तो बीसलदेव रासो में मुख्य रूप से वियोग श्रृंगार का चित्रण हुआ है।

▶ नायिकाओं की सुन्दरता का चित्रण

2.4.2.2 लोक कथाओं की बहुलता

रासो काव्य की रचना पद्य में की गई है जिसमें विजय उल्लास का वर्णन है। लोक कथाओं का प्रयोग करते हुए अनुष्ठान, टोना, भूत-प्रेत, कल्पना, लोक विश्वास और लोकगीत को लेते हुए जनसाधारण में प्रचलित कथाओं को इन कवियों ने चुना है। इसीलिए ये सारे रासो काव्य व्यक्ति-विशेष की सम्पदा न रहकर हिन्दी की जातीय सम्पदा बन चुके हैं।

▶ जनसाधारण में प्रचलित कथाओं का चित्रण

2.4.2.3 ऐतिहासिकता और प्रमाणिकता का अभाव

रासो काव्य के रचयिता मूलतः आश्रयदाताओं के संरक्षण में रहकर रचना करते थे इसलिए अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करने के कारण अनेक स्थानों पर ऐतिहासिकता का आभाव दिखाई देता है। आश्रयदाता की हार को जीत के रूप में बदलने की विवशता भी अनेक अलौकिक और असंभव घटनाओं को जन्म देती है। वीरों के सर कटने से लेकर मानवीय, अतिमानवीय और बाह्य सहायता के माध्यम से अंततः आश्रयदाता की सफलता को अभिव्यक्त करना ही इन रचनाकारों का लक्ष्य था। अतः इनकी प्रामाणिकता संदिग्ध होना स्वाभाविक ही है।

▶ अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन

2.4.2.4 जनचेतना का अभाव

यह काव्य मूलतः राजाओं की वीरता, उनके आख्यानों, श्रृंगार की सीमाओं, रूप-सौन्दर्य, नख-शिख वर्णन से होता हुआ युद्ध के मैदान तक की यात्रा का काव्य है। चारण और भाट युद्धों में भाग लेकर राजाओं की व्यक्तिगत वीरता के साक्षी बनते थे जो मूलतः किसी स्त्री अथवा नायिका की प्राप्ति से जुड़े हुए शौर्य का प्रदर्शन मात्र ही थी। ऐसे में यह काव्य सामाजिक जन-जीवन के भीतर होने वाली हलचलों को देखता और समझता दिखाई नहीं देता। व्यक्तिगत शौर्य की लड़ाइयों के केंद्र में समाज दिखाई नहीं देता। वैसे भी यह युग अपने-अपने राज्यों को ही राष्ट्र मानने की सीमाओं से बंधा हुआ था ऐसे में जन सामान्य के सुख-दुःख से इनका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध दिखाई नहीं देता।

▶ राजाओं की व्यक्तिगत वीरता की साक्षी

2.4.2.5 कथानक रूढ़ियाँ

रूप-सौन्दर्य, ऋतु, युद्ध सभी का वर्णन करते हुए रासो काव्य के रचयिता परंपरा प्रचलित उपमानों को केंद्र में रखते हैं और इसी कारण कथानक रूढियों और काव्य रूढियों का प्रयोग यहाँ विशेष रूप से हुआ है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अनेक कथानक रूढियों में कहानी कहने वाला तोता, स्वप्न में प्रेम मूर्ति दर्शन, मुनि का शाप, लिंग परिवर्तन, नायिका का चित्र, नारी प्रेम, आकाशवाणी, परकाया प्रवेश जैसी लगभग बीस प्रमुख कथानक रूढियों का वर्जन किया है।

▶ कथानक एवं काव्य रूढियों का प्रयोग

2.4.2.6 शैलीगत वैशिष्ट्य

रासो काव्य मूलतः प्रबंध शैली में लिखे गए हैं। वर्णनात्मकता जिनकी प्रमुख विशेषता है। सन्देश रासक और 'पृथ्वीराजरासो' को यदि छोड़ दिया जाए तो विकसनशीलता के कारण अलंकृति भी बहुत अधिक दिखाई नहीं देती। वाक कौशल अथवा चमत्कारोत्पादक संवादों, प्रश्नोत्तर शैली, हेलिका-प्रहेलिका, समस्या पूर्ति, सुभाषित सुक्ति, कहावतों का प्रयोग विशेष रूप से दिखाई देता है। यह काव्य मुख्यतः कथात्मक है। संवाद शैली का प्रयोग करते हुए आद्यांत एक ही छंद का प्रयोग करने का प्रयास दिखाई देता है।

▶ कथात्मक काव्य

2.4.2.7 भाषा

इस काल में प्रायः पाँच भाषाओं कि रचनाएँ प्राप्त होती हैं- अपभ्रंश, डिंगल, खड़ीबोली, ब्रजभाषा तथा मैथिली। अपभ्रंश यह संस्कृत शब्द अपभ्रंश से लिया गया है, जिसका अर्थ है 'भ्रष्ट' या 'गैर-व्याकरणिक भाषा'। इस शब्द का प्रयोग व्याकरण के बिना सभी स्थानीय बोलियों को संदर्भित करने के लिए किया गया था। प्राकृत ने अपभ्रंश में व्याकरण जोड़ा और धीरे-धीरे अपभ्रंश साहित्यिक स्तर पर पहुँच गया। इस भाषा का सबसे प्राचीन रूप सिद्धों, तांत्रिकों तथा योगमार्गी बौद्धों की रचनाओं में मिलता है। दूसरी महत्वपूर्ण भाषा राजस्थानी अथवा डिंगल है। प्रायः सभी रासो इसी भाषा में लिखे गए हैं। भाषा की दृष्टि से डिंगल साहित्य प्रायः अव्यवस्थित है, क्योंकि उनका शुद्ध रूप प्राप्त नहीं होता। उसमें पिंगल का मिश्रण है। खड़ीबोली खडीबोली तथा ब्रज भाषा– इन भाषाओं का रूप अमीर खुसरो की रचनाओं में प्राप्त होता है। उनकी पहेलियों तथा मुकरियों में तत्कालीन भाषा का रूप दिखाई देता है। खडीबोली दिल्ली तथा मेरठ की भाषा थी। इसमें हमें खडीबोली के पूर्व रूप के दर्शन होते हैं। खुसरो की ब्रजभाषा की छंद भी बडे स्वाभाविक और मनोरंजक भी है। मैथिली बिहार के मैथिल जनपद की बोली होने पर भी हिन्दी की विभाषा मानी जाती है। इसलिए इस भाषा में लिखी गई विद्यापति की पदावली हिन्दी साहित्य के अमूल्य निधि मानी गयी है।

▶ पाँच भाषाओं का प्रयोग

2.4.3 प्रमुख कवि

साहित्य का निर्माण परंपराओं से होता है। कोई भी कवि किसी न किसी परंपरा का सहारा लेकर काव्य रचना की ओर प्रवृत्त होता है। हिन्दी साहित्य में प्रत्येक युग किसी न किसी परंपरा का सहारा लेकर ही निर्मित हुआ है। रासो काव्य परंपरा इसका अपवाद नहीं है। रासो काव्य परंपरा के प्रमुख कवियों पर प्रकाश डालना समीचीन होगा।

2.4.3.1 चंदबरदाई

चंदबरदाई हिन्दी के प्रथम कवि के रूप में माने जाते हैं और इनका 'पृथ्वीराजरासो' हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है। चंदबरदाई दिल्ली के अंतिम हिन्दू सम्राट, महाराजा पृथ्वीराज के सामंत और राजकवि के रूप में प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि इनका और महाराजा पृथ्वीराज का जन्म एक ही दिन हुआ था और दोनों ने एक ही दिन यह संसार भी छोड़ा था। ये महाराजा पृथ्वीराज के राजकवि ही नहीं, अपितु उनके सखा और सामंत भी थे। इनका जीवन पृथ्वीराज के जीवन के साथ ऐसा मिला जुला था कि अलग नहीं किया जा सकता। युद्ध में, आखेट में, सभा में, यात्रा में सदा महाराज के साथ रहते थे और जहाँ जो बातें होती थीं, सब में सम्मिलित रहते थे।

- ▶ राजकवि-चंदबरदाई

'पृथ्वीराजरासो' ढाई हजार पृष्ठों का बहुत बडा ग्रंथ है जिसमें 69 समय (सर्ग या अध्याय) हैं। प्राचीन समय में प्रचलित प्रायः सभी छंदों का व्यवहार हुआ है। इसके मुख्य छंद हैं– कवित्त, दूहा, तोमर, त्रोटक, गाहा और आर्या। 'पृथ्वीराजरासो' में आबू के यज्ञकुंड से चार क्षत्रिय कुलों की उत्पत्ति तथा चौहानों के अजमेर में राजस्थान से लेकर पृथ्वीराज के पकड़े जाने तक का सविस्तार वर्णन है। इस ग्रंथ के अनुसार पृथ्वीराज अजमेर के चौहान राजा सोमेश्वर के पुत्र और अर्णोराज के पौत्र थे। कुछ विद्वानों के मतानुसार रासो में दिए गए संवतों का ऐतिहासिक तथ्यों के साथ बिल्कुल मेल न खाने के कारण पृथ्वीराजरासो के पृथ्वीराज समसामयिक किसी कवि की रचना होने से पूरा संदेह किया है और उसे 16 वीं शताब्दी में लिखा हुआ एक जालीग्रंथ ठहराया है।

- ▶ 'पृथ्वीराजरासो' में 69 समय (सर्ग या अध्याय) हैं

पृथ्वीराजरासो के चार संस्करण प्रसिद्ध है– इन चारों संस्करणों को देखकर यह प्रश्न सहज रूप में उत्पन्न होता है कि इनमें से प्रामाणिक संस्करण कौन सा है और इसी से लगा हुआ विवाद भी बढ जाता है। जिसके अनुसार 'पृथ्वीराजरासो' को एक जाली ग्रंथ माना गया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में यह ग्रंथ इस दृष्टि से सर्वाधिक विवादास्पद रहा है। विद्वानों में कई वर्ग बन गए। डॉ. श्यामसुन्दर दास, मिश्रबंधु आदि विद्वानों का मानना है कि पृथ्वीराजरासो का जो संस्करण नागरीप्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित हुआ वही प्रामाणिक है। दूसरा वर्ग रामचन्द्र शुक्ल, गौरीशंकर आदि विद्वानों का है जो रासो को सर्वथा अप्रामाणिक ग्रंथ घोषित करते हैं। आश्चर्य है कि शुक्ल जी इस ग्रंथ को अप्रामाणिक मानते हुए भी उसे अपने इतिहास

में आदिकाल के अंतर्गत स्थान देते हैं। तीसरे वर्ग के विद्वान डॉ. सुनीति कुमार चाटर्जी, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि यह मानते हैं कि पृथ्वीराज चौहान के दरबारी कवि चंदबरदाई ने ही पृथ्वीराजरासो लिखा था। किंतु इसका मूल रूप आजकल उपलब्ध नहीं है।

▶ अप्रामाणिक ग्रंथ

2.4.3.2 जगनिक

ऐसा कहा जाता है कि कालिंजर के राज परमार के यहाँ जगनिक नाम के एक भाट थे जिन्होंने महोबे के दो देश प्रसिद्ध वीरों–आल्हा और ऊदल याने उदयसिंह के वीरचरित का विस्तृत वर्णन एक वीरगीतात्मक काव्य के रूप में लिखा था। उत्तरप्रदेश में 'आल्हा-खंड' के नाम से जो काव्य प्रचलित है वही 'परमालरासो' के मूल रूप का विकसित रूप माना जाता है। यह रासो गेय काव्य था और यह काव्य इतना सर्वप्रिय हुआ कि उसके वीरगीतों का प्रचार क्रमशः सारे उत्तरी भारत में हुआ। जगनिक के काव्य का आज कहीं पता नहीं है पर उसके आधार पर प्रचलित गीत हिन्दी भाषा भाषी प्रांतों के गाँव–गाँव में सुनाई पडते हैं। 'आल्हा' नाम से ये गीत प्रसिद्ध हुए और बरसात में गाए जाते हैं।

▶ वीरगीतात्मक कवि

साहित्यिक रूप में न रहने पर भी जनता के कंठ में जगनिक के संगीत की प्रतिध्वनि अनेक बल खाती हुई अब तक चली आ रही है। इस दीर्घ कालयात्रा में उसका बहुत कुछ कलेवर बदल गया है। देश और काल के अनुसार भाषा और वस्तु में ही परिवर्तन हुआ। आल्हा का प्रचार यों तो सारे उत्तर भारत में है पर बैसवाड़ा इसका मुख्य केंद्र माना जाता है। बुंदेलखण्ड में विशेषतः महोबे के आसपास भी इसका चलन हुआ है। इन गीतों के समुच्चय को 'आल्हाखंड' के नाम से जाने जाते हैं। इससे अनुमान होता है कि आल्हा संबंधी ये वीरगीत जगनिक के रचे उस बडे काव्य के अंतर्गत थे।

▶ 'आल्हाखंड' जगनिक

2.4.3.3 अमीर खुसरो

अमीर खुसरो (1253-1325) चौदहवीं सदी के लगभग दिल्ली के निकट रहने वाले एक प्रमुख कवि, शायर, गायक और संगीतकार थे। उनका परिवार कई पीढ़ियों से राजदरबार से सम्बंधित था। स्वयं अमीर खुसरो ने 8 सुल्तानों का शासन देखा था। अमीर खुसरो प्रथम मुस्लिम कवि थे जिन्होंने हिन्दी शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है। वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने हिन्दी, हिन्दवी और फारसी में एक साथ लिखा। आदिकाल में खडीबोली को काव्य की भाषा बनानेवाले वे पहले कवि हैं। वे अपनी पहेलियों और मुकरियों के लिए जाने जाते हैं। सबसे पहले उन्हीं ने अपनी भाषा के लिए हिन्दवी का उल्लेख किया था। वे फारसी के कवि भी थे। उनको दिल्ली सल्तनत का आश्रय मिला हुआ था। उनके ग्रंथो की सूची लम्बी है।

▶ खडिवोली काव्यभाषा के रूप में पहला प्रयोग

> तरवर से इक तिरिया उतरी उसने बहुत रिझाया
> बाप का उससे नाम जो पूछा आधा नाम बताया
> आधा नाम पिता पर प्यारा बूझ पहेली मोरी
> अमीर ख़ुसरो यूँ कहे अपना नाम न बोली
> (उत्तर=निम्बोली)

पृथ्वीराज की मृत्यु के 90 वर्ष पीछे अमीर खुसरो ने संवत् 1340 के आसापास रचना आरंभ की। इन्होंने गयासुद्दीन बलबन से लेकर अलाउद्दीन और कुतुबुद्दीन मुबारकशाह तक कई पठान बादशाहों का जमाना देखा था। ये फारसी के बहुत अच्छे ग्रंथकार और अपने समय के नामी कवि थे। इनकी मृत्यु संवत् 1381 में हुई। ये बडे ही विनोदी, मिलनसार और सहृदय थे। वे जनता की सब बातों में पूरा योग देना चाहते थे। जिस ढंग के दोहे, तुकबंदियाँ और पहेलियाँ आदि साधारण जनता की बोलचाल में इन्हें प्रचलित और मुकरियाँ प्रसिद्ध हैं। उस समय की काव्यभाषा का ढाँचा अधिकतर शौरसेनी या पुरानी ब्रजभाषा ही रहा है। अर्थात् जिन पश्चिमी प्रदेशों की बोलचाल खडीबोली होती थी, उनमें भी जनता के बीच प्रचलित पद्यों, तुकबंदियों आदि ब्रजभाषा की ओर झुकी हुई थी। अब भी यह बात पाई जाती है। इसी से खुसरो की हिन्दी रचनाओं में भी दो प्रकार की भाषा पाई जाती है। ठेठ खडीबोलचाल, पहेलियों, मुकरियों और दो सखुनों में ही मिलती है, और उनमें भी कहीं–कहीं ब्रजभाषा की झलक है। पर गीतों और दोहों की भाषा ब्रज या मुखप्रचलित काव्यभाषा ही है।

> ▶ अमीर खुसरो को 'तोता-ए-हिंद' कहा जाता है

2.4.3.4 विद्यापति

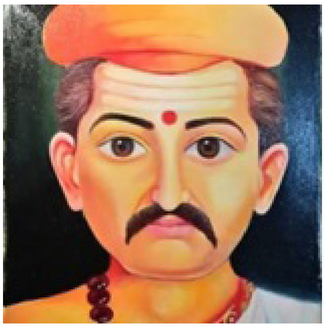

विद्यापति (1352-1448 ई) मैथिली और संस्कृत कवि, संगीतकार, लेखक, दरबारी और राज पुरोहित थे। वह शिव के भक्त थे, लेकिन उन्होंने प्रेम गीत और भक्ति वैष्णव गीत भी लिखे। उन्हें 'मैथिल कवि कोकिल' के नाम से भी जाना जाता है। विद्यापति का प्रभाव केवल मैथिली और संस्कृत साहित्य तक ही सीमित नहीं था, बल्कि अन्य पूर्वी भारतीय साहित्यिक परम्पराओं तक भी था।

> ▶ मैथिली के कवि -विद्यापति

विद्यापति के समय की भाषा, प्राकृत-देर से व्युत्पन्न अवहट्ट, पूर्वी भाषाओं जैसे मैथिली और भोजपुरी के शुरुआती संस्करणों में परिवर्तित होना शुरू हो गया था। इस प्रकार, इन भाषाओं को बनाने पर विद्यापति के प्रभाव को 'इटली में दांते और इंग्लैंड में चासर के समान' माना जाता है। उन्हें 'बंगाली साहित्य का जनक' कहा है। विद्यापति भारतीय साहित्य की 'श्रृंगार-परम्परा' के साथ-साथ 'भक्ति-परम्परा' के प्रमुख स्तंभों मे से एक और मैथिली के सर्वोपरि कवि के रूप में जाने जाते हैं। इनके काव्यों में मध्यकालीन मैथिली भाषा के स्वरूप का दर्शन

किया जा सकता है। इन्हें वैष्णव, शैव और शाक्त भक्ति के सेतु के रूप में भी स्वीकार किया गया है। मिथिला के लोगों को 'देसिल बयना सब जन मिट्ठा' का सूत्र दे कर इन्होंने उत्तरी-बिहार में लोकभाषा की जनचेतना को जीवित करने का महान प्रयास किया है। मिथिलांचल के लोक व्यवहार में प्रयोग किये जानेवाले गीतों में आज भी विद्यापति की श्रृंगार और भक्ति-रस में पगी रचनाएँ जीवित हैं। 'पदावली' और 'कीर्तिलता' इनकी अमर रचनाएँ हैं।

▶ भक्ति-परम्परा के प्रमुख स्तंभ-विद्यापति

2.4.4 लौकिक साहित्य

लौकिक साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जो लोक संवेदना से उपजकर उसका संवर्धन, संचयन और प्रकटीकरण करता है। इसके साथ ही वह लोक जीवन से अविच्छिन्न रहकर लोक का कंठहार बना रहता है। इसके संरक्षण का दायित्व लोग द्वारा ही निभाया जाता है। सिद्धों, जैनों एवं नाथ पंथियों के धार्मिक साहित्य से भिन्न एक अपभ्रंश साहित्यिक धारा के रूप में लौकिक साहित्य उपस्थित है। इस धारा के कवियों में अब्दुलरहमान, विद्यापति, अमीर खुसरो, भट्टकेदार, मधुकर और कल्लोल आदि प्रमुख हैं।

▶ लोक संवेदना साहित्य

2.4.5 गद्य रचनाएँ

काव्य रचना के साथ-साथ आदिकाल में गद्य साहित्य रचना के भी प्रयास लक्षित होते हैं जिनमें राउलवेल, उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण, वर्ण रत्नाकर उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

2.4.5.1 राउलवेल

यह एक शिलांकित कृति है, जिसका पाठ बंबई के प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय से उपलब्ध कर प्रकाशित कराया गया है। विद्वानों ने इसका रचना काल दसवीं शताब्दी माना है। यह गद्य–पद्य–मिश्रित चंपू काव्य की प्राचीनतम हिन्दी कृति है। इसकी रचना 'राउल' नायिका के नखशिख वर्णन के प्रसंग में हुई है। इसके रचयिता रोडा नामक कवि माना जाता है। 'राउलवेल' से हिन्दी में नखशिख वर्णन की श्रृंगार परंपरा आरंभ होती है। इसकी भाषा में हिन्दी की सात बोलियों के शब्द मिलते हैं, जिनमें राजस्थानी प्रधान है।

▶ चंपू काव्य की प्राचीनतम कृति

2.4.5.2 उक्ति–व्यक्ति–प्रकरण

महाराज गोविन्दचन्द के सभा पंडित दामोदर शर्मा ने बारहवीं शताब्दी में इस पुस्तक की रचना की थी। गोविन्दचन्द का शासन काल 1154 ई माना गया है। इसमें बनारस और आसपास के प्रदेशों की संस्कृति और भाषा आदि पर डाला गया है। साथ ही साथ उस युग के काव्य रूपों के संबंध में भी थोडी बहुत जानकारी प्राप्त होती है। इस में गद्य और पद्य दोनों शैलियों की हिन्दी भाषा में तत्सम शब्दावली के प्रयोग की बढती हुई प्रवृत्ति का पता चलता है। हिन्दी व्याकरण की ओर उस समय ध्यान दिया जाने लगा था, यह भी इस प्रुस्तक से सिद्ध होता है।

▶ गद्य और पद्य शैलियों की तत्सम शब्दावली का प्रयोग

2.4.5.3 वर्णरत्नाकर

मैथिली हिन्दी में रचित गद्य की यह पुस्तक डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी और पंडित बबुआ मिश्र के संपादन में बंगाल एशियाटिक सोसाइटी से प्रकाशित हो चुकी है। डॉ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार इसकी रचना चौदहवीं शताब्दी में हुई होगी। इसका लेखक ज्योतिरेश्वर ठाकुर नामक मैथिल कवि था। इसकी भाषा में कवित्व, आलंकारिकता तथा शब्दों की तत्समता की प्रवृत्तियां मिलती है। हिन्दी गद्य के विकास में 'राउलवेल' के पश्चात 'वर्णरत्नाकर' का योगदान भी कम नहीं कहा जा सकता। निश्चय ही इन कृतियों के बीच के समय में भी गद्य रचनाएँ लिखी गयी होंगी, परंतु विभिन्न कारणों से अब से उपलब्ध नहीं हैं।

▶ हिन्दी गद्य के योगदान में महत्त्वपूर्ण

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

अपभ्रंश साहित्य भारत में पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण तक समान रूप से लोक चेतना की अभिव्यक्ति करता है। अपभ्रंश साहित्य अपने परवर्ती साहित्य को कई दिशाओं में प्रभावित करता है। जब से प्राकृत बोलचाल की भाषा न रह गई तभी से अपभ्रंश साहित्य का आविर्भाव समझना उचित होगा। पहले जैसे 'गाथा' या 'गाहा' कहने से प्राकृत का बोध होता था वैसे ही 'दोहा' या 'दूहा' कहने से अपभ्रंश या लोकप्रचलित काव्यभाषा का बोध होने लगा। प्राकृत से बिगडकर जो रूप बोलचाल की भाषा ने ग्रहण किया अपभ्रंश नाम उसी से प्रचलित होने लगा। जब तक भाषा बोलचाल में थी तब तक वह भाषा या देशभाषा ही कहलाती रही, जब वह भी साहित्य की भाषा हो गई तब उसके लिए अपभ्रंश शब्द का व्यवहार होने लगा।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. रासो काव्य परंपरा एवं प्रमुख प्रवृत्तियों पर आलेख तैयार कीजिए।
2. रासो साहित्य के प्रमुख कवियों पर टिप्पणी तैयार कीजिए।
3. लौकिक साहित्य को स्पष्ट कीजिए।
4. आदिकालीन गद्य रचनाओं पर टिप्पणी तैयार कीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी भाषा की संरचना - डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी साहित्य का आदिकाल - आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी
3. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
5. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
2. हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. भोलानाथ तिवारी
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

भक्तिकाल

BLOCK-03

Block Content

Unit 1 : भक्तिकाल-सीमांकन, भक्तिकालीन साहित्य की विशेषताएँ

Unit 2 : भक्तिकाल-राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक परिवेश

Unit 3 : भक्ति आन्दोलन-निर्गुण भक्ति काव्य, सगुण भक्ति काव्य

Unit 4 : सन्त काव्य, प्रेमाख्यान काव्य, राम भक्ति काव्य, कृष्ण भक्ति काव्य

इकाई : 1

भक्तिकाल-सीमांकन, भक्तिकालीन साहित्य की विशेषताएँ

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- हिन्दी साहित्य का इतिहास के भक्तिकाल के अवगत होता है
- भक्तिकाल के सीमांकन से अवगत होता है
- भक्तिकालीन साहित्य की विशेषताओं से अवगत होता है

Background / पृष्ठभूमि

भक्तिकाल के प्रारंभ में विभिन्न परिस्थितियों से प्रभावित होकर काव्य का क्षेत्र बदल गया मुस्लिम प्रभुत्व स्थापित होने के कारण वीरगाथाकालीन भावना भी बदल गयी और विधर्मियों के अत्याचार बढने लगे। कवियों का राजश्रय भाव भी खत्म हो गया। काव्य राज दरबार से हटकर विरक्त साधुओं की कुटियों में आश्रय लेने लगे। फलस्वरूप आश्रयदाताओं के गुणगान के स्थान पर देश का समस्त वातावरण भगवान के कीर्तिगान से ध्वनित हो उठा। इस समय धर्म ज्ञान का नहीं बल्कि भावावेश का विषय हो गया था। देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उसके देवमंदिर गिराए जाते थे, देवमूर्तियाँ तोडी जाती थीं और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन ही सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लडनेवाले स्वतंत्र राज्य भी नहीं रह गए। इतने भारी राजनीतिक उलटफेर के पीछे हिन्दू जनसमुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी सी छाई रही। अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही नहीं रह गया था।

Keywords / मुख्य बिन्दु

स्वर्णयुग, पूर्व मध्यकाल, लोक जागरणकाल

Discussion / चर्चा

भक्तिकाल के उदय की व्याख्या को लेकर साहित्येतिहासकारों में मत वैविध्य देखा जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं– 'अपने पौरूष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था।' बाबू गुलाब राय भी आचार्य शुक्ल के स्वर में अपना स्वर मिलाते हुए लिखते हैं कि "मनोवैज्ञानिक तथ्य के

अनुसार हार की मनोवृत्ति में दो बातें संभव हैं, या तो अपनी आध्यात्मिक श्रेष्ठता दिखाना या भोग विलास में पड़कर हार को भूल जाना।" भक्तिकाल में लोगों में प्रथम प्रकार की प्रवृत्ति पायी गयी।

3.1.1 भक्तिकाल-सीमांकन

▶ पूर्व मध्यकाल नाम से भी जानना

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्ति काल महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आदिकाल के बाद आये इस युग को 'पूर्व मध्यकाल' भी कहा जाता है। इसकी समयावधि 1350 ई. से 1650 ई. तक की मानी जाती है। यह हिन्दी साहित्य का श्रेष्ठ युग है जिसको जॉर्ज ग्रियर्सन ने 'स्वर्णकाल', श्यामसुन्दर दास ने 'स्वर्णयुग', आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'भक्ति काल' एवं हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने 'लोक जागरण' काल कहा। सम्पूर्ण साहित्य के श्रेष्ठ कवि और उत्तम रचनाएँ इसी में प्राप्त होती हैं। दक्षिण में आलवार बंधु नाम से कई प्रख्यात भक्त हुए हैं। इनमें से कई तथाकथित नीची जातियों के भी थे। वे बहुत पढे-लिखे नहीं थे, परंतु अनुभवी थे। आलवारों के पश्चात् दक्षिण में आचार्यों की एक परंपरा चली जिसमें रामानुजाचार्य प्रमुख थे। रामानुजाचार्य की परंपरा में रामानंद हुए। उनका व्यक्तित्व असाधारण था। वे उस समय के सबसे बड़े आचार्य थे। उन्होंने भक्ति के क्षेत्र में ऊँच-नीच का भेद तोड़ दिया। सभी जातियों के अधिकारी व्यक्तियों को आपने शिष्य बनाया। उस समय का सूत्र हो गया था –

जाति-पांति पूछे नहिं कोई।

हरि को भजै सो हरि का होई।।

▶ हिन्दी साहित्य का श्रेष्ठ युग

रामानंद ने विष्णु के अवतार राम की उपासना पर बल दिया। रामानंद ने और उनकी शिष्य-मंडली ने दक्षिण की भक्तिगंगा का उत्तर में प्रवाह किया। समस्त उत्तर-भारत इस पुण्य-प्रवाह में बहने लगा। भारत भर में उस समय पहुँचे हुए संत और महात्मा भक्तों का आविर्भाव हुआ। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने पुष्टि-मार्ग की स्थापना की और विष्णु के कृष्णावतार की उपासना करने का प्रचार किया। उनके द्वारा जिस लीला-गान का उपदेश हुआ उसने देशभर को प्रभावित किया। अष्टछाप के सुप्रसिध्द कवियों ने उनके उपदेशों को मधुर कविता में प्रतिबिंबित किया।

▶ निंबार्क संप्रदाय का प्रभाव

इसके उपरांत माध्व तथा निंबार्क संप्रदायों का भी जन-समाज पर प्रभाव पड़ा है। साधना-क्षेत्र में दो अन्य संप्रदाय भी उस समय विद्यमान थे। नाथों के योग-मार्ग से प्रभावित संत संप्रदाय चला जिसमें प्रमुख व्यक्तित्व संत कबीरदास का है। मुसलमान कवियों का सूफीवाद हिन्दुओं के विशिष्टाद्वैतवाद से बहुत भिन्न नहीं है। कुछ भावुक मुसलमान कवियों द्वारा सूफीवाद से रंगी हुई उत्तम रचनाएँ लिखी गईं।

संपूर्ण भक्तिकाव्य का महत्व उसकी धार्मिकता से अधिक लोकजीवनगत मानवीय अनुभूतियों और भावों के कारण है। इसी विचार से भक्तिकाल को हिन्दी काव्य का 'स्वर्ण युग' कहा जा सकता है।

3.1.2 भक्तिकालीन साहित्य की विशेषताएँ

3.1.2.1 नाम की महत्ता

जप, कीर्तन, भजन आदि के रूप में भगवान का गुण–कीर्तन संतों, सूफियों और सगुण

भक्तों में समान रूप से पाया जाता हे। कृष्ण भक्तों और सूफियों में कीर्तन का महत्व आधिक है, तुलसी भी राम नाम को राम से बडा मानते हैं, क्योंकि नाम में निर्गुण और सगुण दोनों का समन्वय हो जाता है। वह नाम को इन दोनों में बडा मानते हैं। सूर भी ब्रह्म के इन दोनों रूपों को समान महत्व देते थे। कबीर भी 'निर्गुण की सेवा करो, सगुण का करो ध्यान' कहते हैं। जायसी भी इसी मत को मानते हैं।

▶ राम नाम को राम से बड़ा मानना

3.1.2.2 गुरु महिमा

ईश्वर अनुभवगम्य है। उसका अनुभव गुरु ही कर सकता है। इसलिए सभी भक्तों ने गुरु महिमा का गान किया है। कबीर ने कहा है:- "गुरु बड़े गोविंद के मन में देख विचार", इसी प्रकार सूरदास, तुलसीदास ने भी गुरु की महिमा की है। कबीर गुरु को भगवान से भी अधिक महत्व देते हैं 'गुरु गोविन्द दोनों खडे, काके लागू पाँव'। उन्होंने दोनों में से गुरु को ही अधिक सम्मान दिया– 'बलिहारी वा गुरु की जिन गोविन्द दिया दिखाया।' जायसी ने भी गुरु को महत्व दिया– 'गुरु सुआ जेहि पंथ दिखावा बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।' इसी प्रकार तुलसी ने गुरु की वंदना की है– 'बन्दो गुरूपद कंज, कृपासिन्धु नर रूप हरि।' सूर ने भी अपने गुरु को अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति के साथ स्मरण किया है– 'वल्लभ नख चन्द्र छटा बिनु सब जग मांहि अन्धेरो' इस प्रकार उपर्युक्त चारों शाखाओं में गुरु की महिमा समान रूप से मानी गई।

▶ गुरु महिमा का ज्ञान

3.1.2.3 भक्ति भावना का प्राधान्य

चारों शाखाओं में भक्ति भावना का प्राधान्य रहा। निर्गुणोपासक कबीर ने भी भक्ति को प्रधानता दी है। वे मानते हैं कि भक्ति के बिना ज्ञान की और ज्ञान के बिना ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती– 'हरि भक्ति जाने बिना बूढ़ि मुआ संसार।' सूफी कवियों ने भी प्रेम को ईश्वर की भक्ति माना है, यद्यपि उसका रूप शुद्ध भक्ति का नहीं है। सूर और तुलसी की तो प्रत्येक पंक्ति में भक्ति भावना से ओत प्रोत है।

▶ भक्ति की प्रधानता

3.1.2.4 अहंकार का त्याग

अहंकार का त्याग, भक्ति का प्रथम लक्षण है। हृदय में अहंकार रहते भक्ति असंभव है। भक्त चाहे किसी भी वाद को मानने वाला क्यों न हो, अहंकार का त्याग उसके लिए पहली शर्त है। सूर और तुलसी अत्यंत दीन होकर भगवान से अपने उद्धार की प्रार्थना करते हैं।

▶ अहंकार से भक्ति असंभव

3.1.2.5 आडंबर का खंडन

सभी भक्त कवि सादे, सरल और त्यागमय जीवन में विश्वास करते थे। सांसारिक बाह्याडंबर उनके लिए सर्वथा त्याज्य था। सभी भक्त थे, अतः संसार के माया मोह से भी मुक्त थे।

▶ बाह्याडंबर त्याज्य

इस प्रकार भक्तिकाल हिन्दी साहित्य के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण समय रहा है। भक्ति की भावना इस समय की सबसे बडी विशेषता है।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

13वीं सदी तक धर्म के क्षेत्र में बड़ी अस्तव्यस्तता आ गई। जनता में सिद्धों और योगियों आदि द्वारा प्रचलित अंधविश्वास फैल रहे थे, संपन्न वर्ग में भी रूढ़ियों और आडंबर की प्रधानता हो चली थी। मायावाद के प्रभाव से लोकविमुखता और निष्क्रियता के भाव समाज में पनपने लगे थे। ऐसे समय में भक्ति आंदोलन के रूप में ऐसा भारतव्यापी विशाल सांस्कृतिक आंदोलन उठा जिसने समाज में उत्कर्षविधायक सामाजिक और वैयक्तिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. भक्तिकाल पर टिप्पणी तैयार कीजिए।
2. भक्तिकाल के सीमांकन को व्यक्त कीजिए।
3. भक्तिकालीन साहित्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
4. भक्तिकालीन साहित्य का समाज पर प्रभाव विषय पर टिप्पणी लिखिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी भाषा की संरचना - डॉ. भोलानाथ तिवारी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
2. हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. भोलानाथ तिवारी
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

इकाई : 2

भक्तिकाल-राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक परिवेश

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- भक्तिकाल के राजनैतिक परिवेश से अवगत होता है
- भक्तिकाल के सामाजिक परिवेश से अवगत होता है
- भक्तिकाल के सांस्कृतिक परिवेश से परिचित होता है
- भक्तिकाल के धार्मिक परिवेश से परिचित होता है

Background / पृष्ठभूमि

धर्म का प्रवाह कर्म, ज्ञान और भक्ति इन तीन धाराओं में चलता है। इन तीनों के सामंजस्य से धर्म अपनी पूर्ण सजीव दशा में रहता है। किसी एक के भी बिना वह विकलांग रहता है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

धार्मिक असहिष्णुता, बाह्य आक्रमण, समन्वय-वृत्ति, समन्वयात्मकता, शैव-वैष्णवधारा

Discussion / चर्चा

हम जानते हैं कि किसी भी युग-विशेष के साहित्य को समझने के लिए उस युग की परिस्थितियों का अध्ययन अनिवार्य होता है। क्योंकि युगीन परिस्थितियाँ साहित्य में प्रतिफलित होकर उसे प्रभावित करती हैं। भक्तिकालीन साहित्य की परिस्थितियों का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत कर सकते हैं।

3.2.1 राजनैतिक परिवेश

उत्तर भारत में 1325 से 1526 ई. तक तुग्लक वंश, सैयद वंश तथा लोदी वंश का शासन रहा। महम्मद बिन तुग्लक, फीरोज शाह तुग्लक, जोनासाहि, सुल्तान महमूद शाह तक तुग्लक वंश का शासन रहा, तदुपरांत दिल्ली पर खिज्र खां ने अधिकार कर लिया और सैयद वंश की स्थापना हुई जो 1451 ई. तक चलता रहा। लोदी वंश का सर्वाधिक प्रभावशाली सुल्तान इब्राहीम लोदी था, जिससे 1526 ई. में बाबर ने पानीपत के मैदान में युद्ध किया। भक्तिकाल के द्वितीय चरण में मुगलों का शासन रहा। बाबर, हमायूं, अकबर, जहांगीर, शाहजहां के शासन

- मुगल शासन से ओतप्रोत

काल तक भक्तिकाल की समय सीमा है।

मुहम्मद बिन तुग्लक ने अपनी राजधानी दिल्ली से देवगिरि तक ले जाने की मूर्खता की। उसकी नीति हिन्दुओं के प्रति उदार थी, किन्तु फीरोजशाह तुग्लक में धार्मिक असहिष्णुता थी। शेरशाह सूरी ने मालगुजारी एवं कर की उचित व्यवस्था की और पक्षपात रहित होकर कर वसूली की। अकबर ने टोडरमल की सहायता से भू–व्यवस्था में आवश्यक संशोधन किए। अकबर का शासन सुव्यवस्थित था। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि इस काल के अधिकांश शासकों में धार्मिक सहिष्णुता नहीं थी। हिन्दु–मुस्लिम जनता में ही सद्भाव नहीं था। राजनीतिक दृष्टि से भले ही हिन्दुओं का प्रभाव हो गया था, किंतु वे अपने को छोटा मानने को तैयार न थे।

▶ अकबर का सुव्यवस्थित शासन

3.2.2 सामाजिक परिवेश

वर्ण व्यवस्था में आस्था रखने वाले हिन्दू छुआछूत में विश्वास रखते थे। उनमें ऊँच–नीच की भावना विद्यमान थी। हिन्दू और मुसलमानों में परस्पर आत्मीयता नहीं थी। हिन्दू कन्याओं को संपन्न मुसलमान क्रय करके या अपहरण करके अपने घर में ले जाते थे। स्त्रियों को अधिकार प्राप्त नहीं था। उन्हें दूसरे दर्जे का नागरिक माना जाता था। परदा प्रथा उस युग में खास आवश्यकता बन गई थी। हिन्दुओं में संयुक्त परिवार प्रथा थी। छुआछूत समाज में सर्वत्र व्याप्त थी। बहुत सारे कारणों से अनेक हिन्दू धर्म परिवर्तन करके मुसलमान बन गए थे। साधु–संतों में पाखंड, आडंबर अधिक व्याप्त था। मुसलमानों के साथ दीर्घकाल तक संपर्क रहने के कारण वास्तुकला, चित्रकला एवं संगीत के क्षेत्र में इन दोनों में आदान प्रदान होने लगा था।

▶ हिन्दू–मुस्लिम जनता में आत्मीयता की कमी

3.2.3 सांस्कृतिक परिवेश

भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र है-समन्वय की चेष्टा। भक्तिकाल में निरंतर होने वाले बाह्य आक्रमणों का एक परिणाम यह भी हुआ कि बाह्य आक्रांता अपने साथ अपनी संस्कृति भी लेते आए, जो कालांतर में भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग बनती चली गई। मध्यकालीन धर्म-साधना में प्रायः सभी पूर्ववर्ती प्रमुख धर्म-साधनाएँ किसी-न-किसी रूप में अवश्य पाई जाती हैं। इनमें शैव, शाक्त, भागवत और गणपत्य धर्म-साधनाएँ उल्लेखनीय हैं। विभिन्न धर्मों अथवा संप्रदायों के बीच अनेक उपधर्मों का बनना मध्यकाल की मानो विशेषता ही बन गई थी। धार्मिक क्षेत्र में समन्वय-वृत्ति का अनुगूंज हमें तुलसी के 'शिवद्रोही ममदास कहावा, सो नर मोहि सपनेहु नहिं पावा' में सहज ही सुनाई पड़ती है।

▶ उपधर्मों की स्थापना

समन्वयात्मकता की यह प्रवृत्ति वास्तु एवं मूर्ति-कलाओं में भी लक्षित होती है। एलोरा के समीपस्थ वेरूल के कैलाश-मंदिर में शिव की मूर्ति के शीर्ष स्थान पर बोधिवृक्ष स्थित है। चम्बा-नरेश अजयपाल के राज्यकाल में उत्कीर्ण ब्रह्मा, वरुण और शिव के साथ बुद्ध भी हैं। खजुराहो से उपलब्ध कोक्कल के वैद्यमान मंदिर वाले शिलालेख में ब्राह्मा, जिन, बुद्ध तथा वामन को शिव का स्वरूप कहा गया है। इसी प्रकार हरिहर-पूजन में भी शैव-वैष्णवधारा का संगम लक्षित होता है। हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों की निकटता के परिणामस्वरूप चित्र, संगीत और साहित्य-कलाओं में भी दोनों संस्कृतियों के उपकरणों का समावेश हुआ। इस काल के नायक-नायिकाओं के नयनाभिराम चित्रों में, भारतीय व ईरानी संगीत के सम्मिश्रण में तथा 'आदिग्रंथ' में प्राप्त राग-रागनियों और शैलियों में इस समन्वय की झलक प्राप्त होती है। इस वातावरण में भक्ति आंदोलन का विकास हुआ।

▶ भक्ति आंदोलन का विकास

3.2.4 धार्मिक परिवेश

बौद्ध धर्म विकृत होकर हीनयान एवं महायान शाखाओं में बहुत पहले बंट चुका था। वज्रयानियों को ही सिद्ध कहा गया। महायान संप्रदाय ने जनता के निम्न वर्ग को जादू-टोना, अभिचार, तंत्र-मंत्र, चमत्कार दिखाकर प्रभावित कर लिया और धर्म के नाम पर वाममार्ग को अपनाकर मद्य, मांस, मैथुन, मुद्रा को ग्रहण कर लिया। नाथों एवं सिद्धों में कर्मकांड के स्थान पर गुरु को महत्व दिया गया। ईश्वर को घट-घटव्यापी एवं निराकार माना गया। भक्तिकाल में प्रवर्तित संत मत की धार्मिक भूमि सिद्धों और नाथों ने ही तैयार कर दी थी।

▶ ईश्वर को घट-घटव्यापी एवं निराकार माना गया।

भक्ति का जो स्रोत दक्षिण भार तें प्रकट हुआ उसके प्रचार-प्रसार के लिए इस समय उत्तर भारत में अनुकूल वातावरण था। बौद्ध धर्म की विकृतियों का विरोध करते हुए शंकराचार्य ने अद्वैतवाद का प्रचार किया। मन और कर्म की शुद्धता भक्तिभाव से ही होती है, तुलसी के इस सिद्धांत को रामानन्द ने ही आधार भूमि दी थी। सूफी धर्म का प्रचार भी एक बहुत बडे क्षेत्र में हो रहा था। प्रेम मार्ग पर आधारित सूफी संप्रदाय की जडें इस भूमि में पनपने लगीं। हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक समन्वय का आधार सूफियों ने ही तैयार किया।

▶ अद्वैतवाद का प्रचार

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

आदिकाल के वीरता और श्रृंगार से परिपूर्ण साहित्य से एकदम भिन्न इस काल के साहित्य में भक्ति का शांत झरना बहता है। कोई भी साहित्यिक प्रवृत्तियाँ यूं ही अचानक विकसित नहीं होती, उसके पीछे कई सारे प्रमुख कारक, शक्तियां और तमाम परिस्थितियां सक्रिय रहती हैं। लगभग 300 वर्षों के भक्ति साहित्य का सृजन कोई सहज सरल घटना नहीं थी। ऐतिहासिक दृष्टि से भक्ति आंदोलन के विकास को दो चरणों में बांटा जा सकता है- पहले चरण के अंतर्गत दक्षिण भारत का भक्ति आंदोलन आता है और दूसरे चरण में उत्तर भारत का भक्ति आंदोलन आता है।

हिन्दी साहित्य के भक्ति काल का संबंध उत्तरी भारत के भक्ति आंदोलन से है। भक्तिकाल में उत्तर भारत में अनेक धार्मिक संप्रदायों- रामानन्दी संप्रदाय, संत संप्रदाय, वल्लभ संप्रदाय आदि का जन्म हुआ। इन संप्रदायों का जीवन, साहित्य तथा दार्शनिक विचारधारा सरल एवं सुगम था। सभी अपने-अपने दृष्टिकोण का प्रचार-प्रसार जनता की भाषा में कर रहे थे। जाति, वर्ण-व्यवस्था आदि से संबंधित उनके विचार अत्यंत उदार थे। निःसंदेह इस काल में भक्ति-साहित्य ही रचा जाता रहा, साथ ही शासकों और राजाओं के दरबारों में प्रशस्ति, श्रृंगार, रीति, नीति आदि से संबंधित मुक्तक और प्रबंध-काव्यों की निर्मिति भी हुई। भक्तिकाल की यह गौण साहित्यिक प्रवृत्ति ही आगे चलकर 'रीतिकाल' में मुख्य हो गई।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. भक्तिकाल-राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परिवेश पर प्रकाश डालिए।
2. भक्तिकालीन परिवेश ने किस प्रकार साहित्य पर प्रभाव डाला है?
3. 'भक्तिकालीन साहित्य में सामाजिक स्थिति' विषय पर टिप्पणी लिखिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी भाषा की संरचना - डॉ. भोलानाथ तिवारी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
2. हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. भोलानाथ तिवारी
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

इकाई : 3

भक्ति आन्दोलन-निर्गुण भक्ति काव्य, सगुण भक्ति काव्य

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- भक्ति आन्दोलन से अवगत होता है
- भक्ति आन्दोलन के उद्भव से अवगत होता है
- निर्गुण भक्ति काव्य से परिचित होता है
- सगुण भक्ति काव्य से परिचित होता है

Background / पृष्ठभूमि

अपने मूल और शुद्ध रूप में तो भक्ति आंदोलन का जन्म मुसलमानों के आने से पूर्व हो चुका था, विशेषतः दक्षिण भारत में। किन्तु मुसलमानों के आगमन से उत्पन्न एक नवीन परिस्थिति के कारण उत्तर भारत में उसका अधिक प्रचार हुआ। संत, सूफी तथा वैष्णव कवियों ने अपनी स्निग्ध वाणी द्वारा हिन्दू जनता में भक्ति का संचार कर उसकी रक्षा की। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में तो फिर अनेक धार्मिक सुधारकों, जैसे, दादू, प्राणनाथ, गुरु गोविन्द सिंह आदि का उदय हुआ और हिन्दी जनता की मानसिक एवं आध्यात्मिक पिपासा शान्त हुई। सिक्खों के 'ग्रंथ साहब' का संग्रह भी इसी समय हुआ। इन कवियों के ग्रंथ भाषा, भाव, काव्यशास्त्र, काव्य–सौन्दर्य आदि की दृष्टि से हमारे साहित्य की अमूल्य निधि हैं। इस काल में हिन्दी भाषा और संस्कृति संधिकालीन परिस्थिति से निकलकर अपने वास्तविक रूप में स्थापित हुई।

Keywords / मुख्य बिन्दु

दक्षिण आलवार, ऊँच-नीच, लीलापुरुषोत्तम, शोषणकारी वर्ण व्यवस्था, सामाजिक सौहार्द्र

Discussion / चर्चा

भक्ति आंदोलन के साथ देश के विभिन्न अंचलों में जातीय संघटन की शुरुआत भी होती है। संस्कृत और अपभ्रंश का पल्ला छोडकर भक्तों ने देशभाषा में लिखना शुरु कर दिया। सबसे आलवार भक्तों के माध्यम से तमिल जाति बनी। 13वीं शताब्दी में कन्नड़ जाति का उदय हुआ। 15वीं शताब्दी में बंगला, गुजराती और हिन्दी जाति का उदय लगभग एक साथ हुआ। हिन्दी प्रदेश में कबीर पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने संस्कृत को कूपजल और भाखा को बहता नीर कहा। तुलसीदास ने जोखिम उठाकर भी संस्कृत को छोडकर अवधी में लिखना आरंभ किया।

3.3.1 भक्ति आन्दोलन

मध्यकालीन भारत के सांस्कृतिक इतिहास में भक्ति आन्दोलन एक महत्वपूर्ण पड़ाव था। इस काल में सामाजिक-धार्मिक सुधारकों द्वारा समाज में विभिन्न तरह से भगवान की भक्ति का प्रचार-प्रसार किया गया। सिख धर्म के उद्‌भव में भक्ति आन्दोलन की महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती है। भक्ति आंदोलन का आरंभ दक्षिण के आलवार संतों द्वारा 10वीं सदी के लगभग हुआ। वहाँ शंकराचार्य के अद्वैतमत और मायावाद के विरोध में चार वैष्णव संप्रदाय खड़े हुए। इन चारों संप्रदायों ने उत्तर भारत में विष्णु के अवतारों का प्रचार-प्रसार किया। इनमें से एक के प्रवर्तक रामानुजाचार्य थे, जिनकी शिष्यपरंपरा में आनेवाले रामानंद ने (पंद्रहवीं सदी) उत्तर भारत में रामभक्ति का प्रचार किया। रामानंद के राम ब्रह्म के स्थानापन्न थे जो राक्षसों का विनाश और अपनी लीला का विस्तार करने के लिए संसार में अवतीर्ण होते हैं। भक्ति के क्षेत्र में रामानंद ने ऊँच-नीच का भेदभाव मिटाने पर विशेष बल दिया। राम के सगुण और निर्गुण दो रूपों को माननेवाले दो भक्तों - कबीर और तुलसी को इन्होंने प्रभावित किया।

▶ भगवान की भक्ति का प्रचार

विष्णुस्वामी के शुद्धाद्वैत मत का आधार लेकर इसी समय वल्लभाचार्य ने अपना पुष्टिमार्ग चलाया। बारहवीं से सोलहवीं सदी तक पूरे देश में पुराणसम्मत कृष्णचरित के आधार पर कई संप्रदाय प्रतिष्ठित हुए, जिनमें सबसे ज्यादा प्रभावशाली वल्लभ का पुष्टिमार्ग था। उन्होंने शांकर मत के विरुद्ध ब्रह्म के सगुण रूप को ही वास्तविक कहा। उनके मत से यह संसार मिथ्या या माया का प्रसार नहीं है बल्कि ब्रह्म का ही प्रसार है, अतः सत्य है। उन्होंने कृष्ण को ब्रह्म का अवतार माना और उसकी प्राप्ति के लिए भक्त का पूर्ण आत्मसमर्पण आवश्यक बतलाया। भगवान के 'अनुग्रह' या 'पुष्टि' के द्वारा ही भक्ति सुलभ हो सकती है। इस संप्रदाय में उपासना के लिए गोपीजनवल्लभ, लीलापुरुषोत्तम कृष्ण का मधुर रूप स्वीकृत हुआ। इस प्रकार उत्तर भारत में विष्णु के राम और कृष्ण अवतारों की प्रतिष्ठा हुई।

▶ पुष्टिमार्ग का प्रचार

3.3.1.1 भारत में भक्ति आंदोलन के उदय के कारण

मुस्लिम शासकों के बर्बर शासन से कुंठित एवं उनके अत्याचारों से त्रस्त हिन्दू जनता ने ईश्वर की शरण में अपने को अधिक सुरक्षित महसूस कर भक्ति मार्ग का सहारा लिया। हिन्दू एवं मुस्लिम जनता के आपस में सामाजिक एवं सांस्कृतिक संपर्क से दोनों के मध्य सद्‌भाव, सहानुभूति एवं सहयोग की भावना का विकास हुआ। इस कारण से भी भक्ति आंदोलन के विकास में सहयोग मिला। सूफी संतों की उदार एवं सहिष्णुता की भावना तथा एकेश्वरवाद में उनकी प्रबल निष्ठा ने हिन्दुओं को प्रभावित किया; जिस कारण से हिन्दू, इस्लाम के सिद्धांतों के निकट सम्पर्क में आये। हिन्दुओं ने सूफियों की तरह एकेश्वरवाद में विश्वास करते हुए ऊँच-नीच एवं जात-पात का विरोध किया। शंकराचार्य का ज्ञान मार्ग व अद्वैतवाद अब साधारण जनता के लिये बोधगम्य नहीं रह गया था। मुस्लिम शासकों द्वारा मूर्तियों को नष्ट एवं अपवित्र कर देने के कारण, बिना मूर्ति एवं मंदिर के ईश्वर की आराधना के प्रति लोगों का झुकाव बढ़ा, जिसके लिये उन्हें भक्ति मार्ग का सहारा लेना पड़ा। तत्कालीन भारतीय समाज की शोषणकारी वर्ण व्यवस्था के कारण निचले वर्णों की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। भक्ति-संतों द्वारा दिये गए सामाजिक सौहार्द्र और सद्‌भाव के संदेश ने लोगों को प्रभावित किया।

▶ एकेश्वरवाद में प्रबल निष्ठा

3.3.1.2 भक्ति आंदोलन का महत्त्व

भक्ति आंदोलन के संतों ने लोगों के सामने कर्मकांडों से मुक्त जीवन का ऐसा लक्ष्य रखा,

जिसमें ब्राह्मणों द्वारा लोगों के शोषण का कोई स्थान नहीं था। भक्ति आंदोलन के कई संतों ने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल दिया, जिससे इन समुदायों के मध्य सहिष्णुता और सद्भाव की स्थापना हुई। भक्तिकालीन संतों ने क्षेत्रीय भाषाओं की उन्नति में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। हिन्दी, पंजाबी, तेलुगू, कन्नड़, बंगला आदि भाषाओं में इन्होंने अपनी भक्तिपरक रचनाएँ कीं। भक्ति आंदोलन के प्रभाव से जाति-बंधन की जटिलता कुछ हद तक समाप्त हुई। फलस्वरूप दलित व निम्न वर्ग के लोगों में भी आत्मसम्मान की भावना जागी। भक्तिकालीन आंदोलन ने कर्मकांड रहित समतामूलक समाज की स्थपाना के लिये आधार तैयार किया। भक्ति आंदोलन से हिन्दू-मुस्लिम सभ्यताओं का संपर्क हुआ और दोनों के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया। भक्तिमार्गी संतों ने समता का प्रचार किया और सभी धर्मों के लोगों की आध्यात्मिक और नैतिक उन्नति के लिये प्रयास किये।

▶ कर्मकांडों से मुक्त जीवन

3.3.2 निर्गुण भक्ति काव्य

कालक्रम की दृष्टि से निर्गुण काव्य धारा से ही भक्तिकाल का प्रारंभ होता है। इसके प्रवर्तक कबीर हैं। निर्गुण काव्यधारा के अंतर्गत कबीरदास और जायसी दोनों की गणना की जाती है। निर्गुण का प्रयोग उपनिषद् काल में ही दिखाई पड़ता है। श्वेताश्वर उपनिषद् के अनुसार यह विशिष्ट देवता के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है जो सर्वभूतरत, सर्वव्यापी, चैतन्यस्वरूप और निरूपाधि है। यद्यपि कबीर ने अपने ब्रह्म को सगुण–निर्गुण से ऊपर माना है फिर भी उनका कहना है -'हम निर्गुण तुम सरगुण जाना।' इस तरह से वे अपने को सगुणोपासकों से अलग कर लेते हैं। सगुणोपासक तुलसीदास कहते हैं कि 'सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा।' व्यवहार के स्तर पर उनका उपास्य सगुण ब्रह्म ही है। कबीर का निर्गुणपंथ सूफियों के निर्गुणवाद से किंचित भिन्न है। कबीर का ब्रह्म न वेद–वर्णित ईश्वर है, न कुरान–वर्णित खुदा। वह इन दोनों से न्यारा हे। वह निर्गुण की लीकबद्धता से अलग है।

▶ विशिष्ट देवता के विशेषण

शुक्ल जी ने इसे ज्ञानाश्रयी नाम दिया।

3.3.2.1 निर्गुण भक्ति काव्य की विशेषताएँ

1. निर्गुण ब्रह्म में विश्वासः ज्ञानमार्गी संत कवि निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर बल देते हैं। निर्गुण ब्रह्म को इन संतों ने वर्णनातीत माना तथा इसे अनुभवजन्य कहा। क्योंकि निराकार ईश्वर प्रत्येक कंठ में विद्यमान है अतः उसे बाहर ढूँढना मूर्खता है। केवल ज्ञानमार्ग द्वारा ही हम अपने हृदय के भीतर उसका साक्षात्कार कर सकते हैं। निर्गुण ईश्वर का वर्णन नहीं किया जा सकता। निर्गुण संत कवियों के राम दशरथ के पुत्र श्रीराम न होकर निराकार ईश्वर ही हैं जो संसार के कण-कण में विद्यमान हैं। उसे मंदिरों, मस्जिदों में या जंगलों में धूनी रमा कर नहीं खोजा जा सकता। वह मनुष्य के अपने ही हृदय में बसा है।

▶ निराकार ईश्वर

2. एकेश्वरवाद का समर्थनः निर्गुणवादी संत कवियों ने हिन्दुओं और मुसलमानों में एकता स्थापित करने के उद्देश्य से एकेश्वरवाद का समर्थन किया तथा बहुदेववाद का विरोध किया।

▶ एक ही ईश्वर

3. रूढ़िवाद एवं मिथ्याडम्बर का विरोधः निर्गुण भक्त कवियों ने पण्डितों और मुसलमानों द्वारा धर्म की आड़ में किये जाने वाले जनसाधारण के शोषण का पर्दाफाश किया।

▶ ईश्वर को महत्व देना

4. जाति-पाति तथा भेदभाव का विरोधः ज्ञानमार्गी शाखा के कवि जाति-पाति में विश्वास नहीं रखते थे। उनका विश्वास था कि जाति-पाति, ऊँच-नीच की ये दीवारें मनुष्य ने अपने स्वार्थ के लिए खड़ी की हैं। जबकि ईश्वर तो सबका एक है।

▶ गुरु कृपा की अनिवार्यता

5. सत्गुरु का महत्त्वः ज्ञानमार्गी संत कवियों ने गुरु की महत्ता पर अधिक बल दिया है। उन्होंने गुरु को ईश्वर से भी बड़ा माना है। संत कवियों का विश्वास है भगवद्कृपा पाने के लिए गुरू कृपा अनिवार्य है। गुरू ही मनुष्य के मानसिक एवं शारीरिक विकारों को दूर कर सकता है। ज्ञानमार्गीयों का मानना था कि गुरू ही मनुष्य के हृदय में ज्ञान चक्षु खोलकर मन के अंधकार को मिटा सकता है।

निर्गुण भक्ति

ज्ञानाश्रयी (प्रमुख कवि)	प्रेमाश्रयी (प्रमुख कवि)
कबीर	मलिक मुहम्मद जायसी
रैदास/रविदास	कुतुबन
धर्मदास	मंझन
गुरुनानक	उसमान
दादूदयाल	शेखनबी
सुंदरदास	कासीम शाह
मलूकदास	नूर मुहम्मद

3.3.3 सगुण भक्ति काव्य

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में भक्ति की दो धाराएं सगुण तथा निर्गुण प्रवाहित हुईं। सगुण धारा के अन्तर्गत राम-कृष्ण भक्ति की शाखाएं आती हैं, निर्गुण के अंतर्गत सन्त तथा सूफियों का काव्य आता है। जिन भक्त कवियों ने ईश्वर को अवतार मानकर (सगुण) उसकी उपासना की उनकी भक्ति को सगुण भक्ति कहा गया। जिन कवियों ने ईश्वर को एक साकार रूप में

स्वीकार किया और उसी साकार ईश्वर के रूप को आधार मानकर काव्य सृजन किया उस काव्य को सगुण भक्ति काव्य कहा गया। भक्तिकाल की सगुण काव्य के अंतर्गत श्रीकृष्ण का स्थान सर्वोपरि है। सगुण भक्ति-धारा में ईश्वर के साकार सगुण रूप की उपासना राम और कृष्ण रूप में भगवान विष्णु के अवतारों की कल्पना करके सख्य और सेवक भाव से भक्ति कर ईश्वर की प्राप्ति का मार्ग बताया गया।

▶ ईश्वर को अवतार मानना

यह काव्यधारा उन भक्तों के अन्तःस्थल से प्रवाहित हुई जो अपने इष्ट देवों की पूजा और उपासना में मग्न थे। वे देश और जाति का कल्याण भगवद् भजन में ही देखते थे। राजदरबारों के ऐश्वर्य में उनको कोई आकर्षण नज़र नहीं आता था। कृष्ण-भक्त कवि कुंभनदास ने सम्राट अकबर के राजदरबार में निमन्त्रण को ठुकराते हुए कह दिया था 'संतन को कहा सीकरी सों काम'। सगुण भक्त कवि मुसलमानों के विरोधी तो न थे किन्तु उनसे मिलने की भी इच्छा नहीं रखते थे। मुसलमान शासक धड़ाधड़ हिन्दुओं को इस्लाम धर्म स्वीकार करने पर विवश कर रहे थे, अतः सगुण भक्त कवियों ने अपने काव्य द्वारा धर्म और जाति की रक्षा करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। अकेले तुलसीकृत 'रामचरितमानस' ने न केवल हिन्दुओं को एक किया बल्कि उनकी रक्षा भी की। आज तक घर-घर में उसका पाठ किया जाता है। यह इस ग्रन्थ की महत्ता को दर्शाता है।

▶ काव्य द्वारा धर्म और जाति की रक्षा

3.3.3.1 सगुण भक्ति काव्य की विशेषताएँ

1. **ईश्वर का सगुण रूप-** मध्यकालीन सगुण भक्त कवियों का उपास्य सगुण है। वैष्णव आचार्यों का कथन है कि सगुण के गुण अप्राकृतिक हैं। लौकिक गुण परिवर्तनशील, अस्थिर और कारण कार्यजन्य होते हैं, किन्तु प्रभु के दिव्य गुण ह्रास विकास रहित हैं। भगवान का यह स्वरूप हृदय और बुद्धि की पहुंच से परे है। यह सगुण भगवान स्रष्टा, पालक और संहारक है। अन्त में विष्णु के रूप में इन रूपों का समाहार हो जाता है। वे ही सर्ग, स्थिति और संहार के अधिष्ठित हैं। इन भक्तों का ध्यान भगवान के पालक रूप पर केन्द्रित है क्योंकि पालन के साथ धर्म-भावना सम्बद्ध है। इन्हें उपासना क्षेत्र में ईश्वर का सगुण रूप मान्य है अन्यथा इनके यहां भी निर्गुण ईश्वर की ही स्वीकृति है। इनके लिए भगवान चल भी है और अचल भी, मूर्त भी है और अमूर्त भी, वामन भी है और विराट भी, सगुण भी है और निर्गुण भी। वस्तुतः वह अनिर्वचनीय है और कालातीत है किन्तु उसका अपनी समग्रता में किसी काल में अवतरित होना असंभव नहीं। सगुणवादियों के अनुसार मनुष्य वस्तुतः ब्रह्म है, नर और नारायण एक है, अवतारी तथा अवतार सर्वथा अभिन्न है। अतः "नरो नारायणश्चैव तत्वमेकम् द्विधा कृतम्"- नर नारायण वस्तुतः एक तत्व है, उनका द्वैधीकरण व्यावहारिक बुद्धि का भ्रम मात्र है।

▶ अनिर्वचनीय है और कालातीत ईश्वर

2. **अवतार भावना–** अवतारवाद मध्यकालीन सगुण उपासना का एक प्रमुख अंग है। सगुण भक्त कवियों का विश्वास है कि वह असीम सीमा को स्वीकार करके अपनी इच्छा से लीला के लिए अवतरित होते हैं। वैसे तो सारा संसार उस भगवान का अवतार हैं किन्तु इन वैष्णवों की अवतार-भावना के मूल में गीता का विभूति एवं ऐश्वर्य योग काम कर रहा है। ज्ञान, कर्म, वीर्य, ऐश्वर्य, प्रेम भगवान की विभूतियाँ हैं। जो मनुष्य किसी क्षेत्र में कौशल दिखाते हैं वे भगवान की विभूति को साकार करते हैं। अतः गुणातीत और सगुण, असीम और ससीम में कोई विरोध नहीं है।

▶ सगुणोपासना के प्रमुख अंग

3. **लीला रहस्य-** सगुण काव्य में लीलावाद का अत्यंत महत्त्व है। चाहे तो तुलसी के मर्यादा

पुरुषोत्तम हों और चाहे सूर के ब्रजराज कृष्ण हों, दोनों लीलाकारी हैं। उनके अवतार को उद्देश्य लीला है। तुलसी के लोकरक्षक राम रावण का संहार लीलार्थ करते हैं। तुलसी के लिए समस्त रामचरित लीलामय है। सच तो यह है कि सगुण भक्ति लीला में सच्चिदानन्द के आनन्द का जगत स्वरूप देखता है। लीला और आनन्द ध्वनि और प्रतिध्वनि के समान परस्पर सम्पृक्त हैं। इसी सम्बन्ध में यह स्मरण रखना होगा कि लीला में किसी प्रकार की वर्जनशीलता या लोकविद्वेष भावना नहीं है। तथ्य तो यह है कि जीवन और दर्शन की चरम सफलता लीलावाद में निहित है।

▶ लीलाकारी ईश्वर

4. **रूपोपासना-** सगुण साधना में रूपोपासना का विशिष्ट स्थान है। शंकर ने नाम और रूप को मायाजन्य माना है। सगुण साधना में भगवान के नाम और रूप आनन्द के अक्षय कोश हैं। नाम और रूप से ही वैधी भक्ति का आरंभ होता है। सगुण भक्त को भगवान के नाम और रूप इतना विमुग्ध कर लेते हैं कि लौकिक छवि उसके पथ में बाधक नहीं बन सकती। आरंभ में सगुणोपासक नाम रूप-युक्त अर्चावतार अथवा मूर्ति के समक्ष आकर उपासना करता है। परन्तु निरंतर भावना, चिन्तन एवं गुण-कीर्तन से वह अपने आराध्य में ऐसा सन्निविष्ट हो जाता है कि उसे किसी भौतिक उपकरण की आवश्यकता ही नहीं रहती। रूप ही श्रृंगार रस को जगाता है। हिन्दी के मध्यकालीन भक्ति साहित्य में भक्ति के गृहीत स्वरूपों- दास्य, सख्य, वात्सल्य और दाम्पत्य में रूप और रस का एक विलक्षण महत्व है।

▶ भगवान के रूप आनंद और अक्षयकोश

5. **शंकर के अद्वैतवाद का विरोध-** भागवत के अतिरिक्त हिन्दी के सगुण काव्य पर रामानुज, निम्बार्क, मध्वाचार्य तथा वल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धांतों का प्रभाव पड़ा है। इन सभी आचार्यों ने शंकर के ज्ञानमूल अद्वैतवाद का, जो भक्ति को परम सत्य नहीं मानता, खंडन किया और भक्ति तत्व का समाधान करते हुए भगवद प्राप्ति में उसकी अनिवार्यता सिद्ध की। रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद में ब्रह्म प्रकारी है और जीव तथा प्रकृति उसके प्रकार हैं। जीवन की कृतकृत्यता इसी में है कि वह अपने-आपको भगवान का विशेषण माने। आत्मसमर्पण के द्वारा जीव को यह स्थिति प्राप्त हो सकती है। परमात्मा अंशी है और जीव उसका अंश है। मध्वाचार्य ने जीव की उत्पत्ति ब्रह्म से मानी है किन्तु ब्रह्म को स्वतंत्र और जीव को परतंत्र माना है।

▶ ब्रह्म प्रकारी विशिष्टाद्वैत

6. **जाति भेद की अमान्यता-** इस काल के सगुण भक्ति कवियों तथा आचार्यों ने भक्ति के क्षेत्र में जाति-पांति का बंधन स्वीकार नहीं किया। यद्यपि कर्म-क्षेत्र में इन सब ने वर्णाश्रम व्यवस्था पर बल दिया है, परन्तु भगवद्भक्ति क्षेत्र में किसी के शूद्र होने के नाते उसे भक्ति के अधिकार से वंचित नहीं किया।

▶ भक्ति के क्षेत्र में अमान्य जातिभेद

7. **गुरु की महत्ता-** सगुण भक्तों के यहां भी निर्गुण सन्तों और सूफियों के समान गुरु का अत्यंत महत्व है। इस साहित्य में गुरु ब्रह्म का प्रतिनिधि और अंश है। सगुण साहित्यकारों ने संसार की सब वस्तुओं से गुरु को उच्चतम माना है और उसकी महत्ता की भूरि-भूरि श्लाघा की है। सूर और तुलसी का साहित्य इस कथ्य का सुन्दर निदर्शन है। नन्ददास ने बल्लभ को ब्रह्म के रूप में ग्रहण किया है। इनका विश्वास है कि गुरु के बिना ज्ञान असंभव है और ज्ञानाभाव में मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता ज्ञान से भक्ति और भक्ति से उसका सायूज्य प्राप्त होता है।

▶ गुरु के बिना ज्ञान असंभव है और ज्ञानाभाव में मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता

हिन्दी के मध्यकालीन सगुण उपासकों के लिए भगवान सगुण है। वह अक्षर ब्रह्मज्ञान द्वारा ही प्राप्य है पर वह ज्ञानियों का विषय है। भक्ति और ज्ञान दोनों भव-संभव खेद के

▶ भगवान की भक्ति एवं प्रेम का उद्देश्य

अपहारक हैं परन्तु ज्ञान कृपाण की धारा के समान है। भक्ति माया की विभीषिका से रहित है। भक्ति उपाय भी है और उपेय भी उसके समक्ष मोक्ष भी तुच्छ है। भगवान की भक्ति एवं प्रेम का उद्देश्य है कि उसकी निकटता प्राप्त करके उसमें रमण करना तथा उसकी लीलाओं में अपने-आपको लीन करना।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

भक्ति आंदोलन इतना व्यापक, गहरा, लोकोन्मुखी और प्रभावशाली था कि इसे देखकर किसी का भी आश्चर्यचकित हो जाना अस्वाभाविक नहीं है। यह पहला भारतीय नवजागरण था जो कश्मीर से कन्याकुमारी और गुजरात से असम तक फैला हुआ था। सारे देश में इसका प्रसार एक साथ नहीं हुआ, कहीं पहले हुआ, तो कहीं काफी बाद में। अपनी–अपनी ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण यह कहीं 7वीं शताब्दी में फैला, कहीं 13 वीं शताब्दी में तो कहीं 15वीं शताब्दी में। देश के अन्य अंचलों की अपेक्षा हिन्दी भाषा–भाषी प्रदेश का भक्ति आन्दोलन अपने वैविद्य और अन्तर्विरोधों में काफी जटिल और नाना रूपात्मक है। भिन्न–भिन्न प्रदेशों के आन्दोलनों की एकसूत्रता और भिन्नरूपता को समझने के लिए उनके बीच के समय के अन्तराल तथा ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का आकलन आवश्यक है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. भक्ति आन्दोलन पर टिप्पणी तैयार कीजिए।
2. भक्ति आन्दोलन के उद्‌भव पर पर्चा लिखिए।
3. निर्गुण भक्ति काव्य का परिचय दीजिए।
4. सगुण भक्ति काव्य का परिचय दीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी भाषा की संरचना - डॉ. भोलानाथ तिवारी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
2. हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. भोलानाथ तिवारी
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

इकाई : 4

सन्त काव्य, प्रेमाख्यान काव्य, रामभक्ति काव्य, कृष्णभक्ति काव्य

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- संत काव्य परंपरा से अवगत होता है
- प्रेमाख्यान काव्य से परिचित होता है
- राम भक्तिकाव्य से अवगत होता है
- कृष्ण भक्ति काव्य से परिचित होता है

Background / पृष्ठभूमि

भक्ति का स्रोत दक्षिण से आया तथापि उत्तर भारत की नई परिस्थितियों में उसने एक नया रूप भी ग्रहण किया। मुसलमानों के इस देश में बस जाने पर एक ऐसे भक्तिमार्ग की आवश्यकता थी जो हिन्दू और मुसलमान दोनों को ग्राह्य हो। इसके अतिरिक्त निम्न वर्ग के लिए भी अधिक मान्य मत वही हो सकता था जो उन्हीं के वर्ग के पुरुष द्वारा प्रवर्तित हो। महाराष्ट्र के संत नामदेव ने 14 वीं शताब्दी में इसी प्रकार के भक्तिमत का सामान्य जनता में प्रचार किया जिसमें भगवान के सगुण और निर्गुण दोनों रूप गृहीत थे। कबीर के संतमत के ये पूर्वपुरुष हैं। दूसरी ओर सूफी कवियों ने हिन्दुओं की लोककथाओं का आधार लेकर ईश्वर के प्रेममय रूप का प्रचार किया।

इस प्रकार इन विभिन्न मतों का आधार लेकर हिन्दी में निर्गुण और सगुण के नाम से भक्तिकाव्य की दो शाखाएँ साथ- साथ चलीं। निर्गुणमत के दो उपविभाग हुए- ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी। पहले के प्रतिनिधि कबीर और दूसरे के जायसी हैं। सगुणमत भी दो उपधाराओं में प्रवाहित हुआ- रामभक्ति और कृष्णभक्ति। पहले के प्रतिनिधि तुलसी हैं और दूसरे के सूरदास।

Keywords / मुख्य बिन्दु

लोककथाओं, निर्गुणमत, निर्गुणोपासक, सामंतवादी, मानवतावादी, अवतारवाद, उलटबांसियाँ

Discussion / चर्चा

चौदहवीं शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शताब्दी के लगभग मध्य तक सगुण और निर्गुण नाम से भक्तिकाव्य की दो धाराएँ बराबर चलती रहीं, सगुण और निर्गुण। निर्गुण शाखा की दो उप

शाखाएँ हो गई थी संत काव्य और प्रेममार्गी काव्य या सूफी काव्य। इसमें निर्गुण शाखा संत कबीर के नेतृत्व में विकसित होते थे और प्रेममार्गी शाखा सूफियों के।

3.4.1 सन्त काव्य

संत काव्य परंपरा भक्तिकाल की आरम्भिक काव्यधारा है। इसका संबंध निर्गुण भक्ति से है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे ज्ञानाश्रयी शाखा कहा है। निर्गुण भक्त कवि अधिकांश निम्न जाति के थे। उन्हें मंदिरों में प्रवेश की मनाही थी। ईश्वर से वंचित किये गये इन जातियों ने तब ईश्वर को अपनी कल्पना में गढ़ा, जिसमें ईश्वर के प्रचलित रूप के विरोध की भी भावना थी। इसलिए इस धारा के संत कवियों ने अपनी उपासना का आधार गुणातीत ब्रह्म को बनाया है। संत काव्य तत्कालीन सामंतवादी और रूढ़िवादी परिवेश में मानवतावादी चेतना की प्रखर अभिव्यक्ति है। यह उस सांस्कृतिक जागरण की सशक्त अभिव्यक्ति है, जो गहरे मानवीय सरोकारों से उपजी है और सार्वभौमिक मानव मूल्यों को प्रतिष्ठापित करता है। वस्तुतः संत काव्य परम्परा के लिए पृष्ठभूमि बहुत पहले से तैयार हो रही थी। पूर्व में बौद्ध धर्म वज्रयान और सहजयान में परिणत हो गया था।

▶ मानवतावादी चेतना की अभिव्यक्ति

दक्षिण से चला वैष्णव संप्रदाय पूरे देश में प्रभाव जमाने लगा था जिसका नाथ पंथ और अन्य सम्प्रदायों से वैचारिक आदान-प्रदान होने लगा था। इनके बीच में इस्लाम के समानता के सिद्धांत ने अपनी पैठ बनायीं। इन सभी ने संत काव्य के दार्शनिक आधार को तैयार करने में योगदान दिया। शंकराचार्य एवं उपनिषदों द्वारा प्रतिपादित अद्वैत दर्शन, नाथपंथ, सूफी धर्म एवं इस्लाम दर्शन इन सबों का एकीकृत रूप ही संत काव्य का दार्शनिक आधार है। उपनिषदों में वर्णित ब्रह्म, जीव, जगत एवं माया के स्वरूप को संतों ने ज्यों का त्यों ग्रहण किया है। इनका साधना पक्ष शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन की देन है। नाथ पंथ से संतों ने शून्यवाद, योगसाधना, गुरू की महिमा का तत्व ग्रहण किया। इस्लाम के प्रभाव से संतों ने एकेश्वरवाद को स्वीकार किया तथा मूर्तिपूजा एवं अवतारवाद का घोर विरोध किया। सूफी संतों से प्रेम भावना को ग्रहण करने के साथ-साथ दाम्पत्य प्रतीकों का प्रयोग अपनी भक्ति की अभिव्यक्ति हेतु किया। बौद्धों एवं वैष्णवों से इन्होंने अहिंसावाद को ग्रहण किया। सिद्ध सम्प्रदाय की गूढ़ उक्तियाँ, उलटबांसियाँ, वैदिक परम्पराओं एवं धार्मिक बाह्याचार का विरोध भी संत काव्य में मिलता है।

▶ एकेश्वरवाद को स्वीकारना

संत कवियों की परम्परा का आरम्भ बारहवीं शताब्दी में जयदेव से होता है। उनके निर्गुण भाव के पद आदिग्रन्थ में संकलित हैं। तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में संत ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम आदि संत इस परम्परा को आगे बढ़ाते है। इसके बाद कबीरदास के गुरु रामानंद आते है। लेकिन हिन्दी में संत काव्य की परंपरा के सूत्रपात का श्रेय कबीरदास को है। रविदास, सेना, पीपा, पद्मावती, सुरसुरी और धन्ना कबीर के गुरु भाई थे। इस परंपरा में आगे चलकर अनेक पंथों की स्थापना हुई। कबीर के अनुयायियों द्वारा स्थापित कबीर पंथ के अतिरिक्त नानक के पंथ, दादू के दादू पंथ और मलूक दास के मलूक पंथ अस्तित्व में आते गए। कबीर ने संत मत के निश्चित सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार किया। कबीर से शुरू हुई संत काव्य परंपरा में दादू, गुरु नानक, सुन्दर दास, गरीब दास, धर्मदास, जगजीवन साहब, जम्भ दास, मलूक दास, हरिदास, चरण दास, गुलाब साहब आदि कवि हुए है।

▶ कबीरदास के गुरु रामानंद

3.4.1.1 सन्त काव्य की विशेषताएँ

संत साहित्य के संबंध मे स्मरण रखना चाहिए कि अपने–अपने मत से संबंधित विभिन्न

संप्रदायों की रचनाएं तो अनेक मिलती हैं, किंतु उनमें साहित्यिकता का अभाव है। इसका सबसे बडा कारण यह है कि संत मत का प्रचार निम्न वर्ग के अशिक्षित लोगों में ही अधिक रहा है। संतों ने एक ओर गुरु भक्ति, साधु संग, दया, क्षमा, संतोष आदि का उपदेश दिया है,तो दूसरी ओर कपट, माया, तृष्णा, कामिनी, कांचन, तीर्थ, व्रत, मांसाहार, मूर्तिपूजा आदि का खंडन किया है। संत कवियों में प्रेम की भावना प्रधान है और वे ईश्वर से विविध लौकिक संबंध स्थापित करते हैं। इस दृष्टि से वे शुद्ध निर्गुणवादी सिद्ध नहीं होते। वास्तव में संत मत सिद्ध-नाथ का ही एक विकसित रूप माना जा सकता है। उसके निर्माण में दो संस्कृतियों और दो धार्मिक प्रवृत्तियों का हाथ है। किन्तु तब भी वह मध्य युग की एक अत्यंत महत्वपूर्ण विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है, जिसका संबंध जनजीवन से है।

▶ प्रेम की भावना

3.4.1.2 सन्त काव्य के प्रमुख कवि

भक्तिकाल की इस निर्गुण संत काव्य परंपरा में कबीर का प्रमुख स्थान है। कबीर ही उसके प्रवर्तक माने जाते हैं। अनेक लौकिक और अलौकिक बातों के समावेश हो जाने से कबीर के जीवनवृत्त के संबंध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। उनकी जन्म तिथि के संबंध में अनेक मत हैं। कबीर पंथियों में उनकी जन्म तिथि 1398 और मृत्यु 1518 मानी जाती है। जिनके अनुसार कबीर एक सौ बीस वर्ष जीवित रहे। कबीर के जन्म और जाति के संबंध में विभिन्न मत प्रचलित हैं। किन्तु इतना निश्चित है कि कबीर मुसलमान थे। स्वयं कबीर ने कई स्थानों पर अपने को जुलाहा कहा है।

▶ संतकाव्य प्रवर्तक कबीर

कबीर परंपरा ही से धार्मिक प्रवृत्ति के थे। वे लोगों को उपदेश दिया करते थे। किन्तु लोग उन्हें निगुरा कहते थे यानि गुरु हीन। अंत में वे रामानन्द के शिष्य हुए। कबीर ने खूब पर्यटन किया और संतों तथा सूफियों का सत्संग किया। कहते हैं कबीर का विवाह किसी बनखंडी वैरागी की कन्या लोई से हुआ था और कमाल और कमाली उनकी संतान कही जाती हैं। वास्तव में कबीर के जीवन के संबंध में अनेक अलौकिक कथाओं का उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि मृत्यु के समय वे काशी से मगहर चले आए थे। उनके शव को लेकर हिन्दुओं और मुसलमानों में झगडा हुआ। अंत में जब कफन हटाया गया तो फूलों का ढेर मिला।

▶ गुरु हीन

कबीर की वाणी का संग्रह 'बीजक' के नाम से प्रसिद्ध है जिसके तीन भाग हैं– रमैनी, सबद और साखी। साखियों में दोहा छन्द के माध्यम से सांप्रदायिक शिक्षा और सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ। उनकी भाषा पंजाबी, राजस्थानी मिश्रित खडीबोली या 'सधुक्कड़ी' है। रमैनी और सबद के अंतर्गत गाने के पद आते हैं, जिनकी भाषा में ब्रज और पूरबी का रूप मिलता है। कबीर यद्यपि स्वामी रामानंद के शिष्य थे और उन्होंने 'राम शब्द' का प्रयोग भी किया है, किंतु उनके राम दशरथि राम नहीं हैं। उन्होंने राम का प्रयोग निर्गण ब्रह्म के रूप में किया हैः–

'निर्गुण राम निर्गुण राम जपहुँ रे भाई।'

वास्तव में कबीर के राम अपनी निजी विशेषता लिए हुए हैं। उनमें तो कभी-कभी निर्गुण भावना में भी स्थूल भावना का आभास मिलता है। इसलिए वे राम को निर्गुण और सगुण दोनों से परे मानते हैं। उनकी रचनाओं में भारतीय निर्गुण ब्रह्मवाद, सूफियों का रहस्यवाद, योगियों की साधना, अहिंसा आदि बातें होते हुए भी स्वामी-सेवक के संबंध की दृष्टि से

सगुण ब्रह्म का भी उल्लेख हो गया है। कबीर ब्रह्म के जिज्ञासु हैं। वे चिंतन के क्षेत्र में ज्ञानी हैं, भावुकता और कल्पना एवं कविता के क्षेत्र में रहस्यवादी है। उन्हें संसार के प्रत्येक कण और व्यापार में प्रियतम का मधुर रूप ही दिखाई देता है। सूफियों की तरह वे भी ब्रह्मानन्द का प्रेमानन्द के रूप में वर्णन किया है। इसी प्रेम की अवस्था में वे आत्म समर्पण करते हैं।

▶ सधुक्कड़ी

मुसलमानों के आने से भारतीय समाज में जो एक अभूतपूर्व परिस्थिति उत्पन्न हो गई थी, उस समय कबीर ने एक समन्वयात्मक मध्यम मार्ग का सर्जन किया। उन्होंने दोनों धर्मों के ऐसे आडंबरपूर्ण कृत्यों का विरोध किया, जो दोनों के बीच में बाधक–रूप थे। उन्होंने परंपरा– पालन और अंधविश्वास तथा अन्य अनेक कुरीतियों और कुप्रथाओं को हटाने की चेष्टा की। वे निर्भय होकर सत्यानुमोदन करते थे। उन्होंने ऊँच–नीच की भेदभाव को हटाकर एकीकरण पर बल दिया। इस दृष्टि से कबीर का मध्यकालीन भारतीय संस्कृति के महत्वपूर्ण स्थान है। इनके अलावा रैदास, नानक देव, हरिदास निरंजनी, दादू दयाल, मलूकदास, धर्मदास, सुंदरदास, रज्जब, गुरु अंगद, रामदास, अमरदास, अर्जुन देव, लालदास, सींगा, बाबा लाल, वीरभान, निपटनिरंजनी, शेख फरीद, संतभीषन, संत सदना, संत बेनी, संत पीपा, संत धन्ना आदि प्रमुख हैं।

▶ समन्वयात्मक मध्यम मार्ग

3.4.2 प्रेमाख्यान काव्य

जिस समय भारतवर्ष में मुसलमानी शासन स्थापित हुआ था उसी समय से देश में धार्मिक संघर्ष छिड़ गया था। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जब हिन्दुओं को इस्लाम या मृत्यु, इन दो में से एक को चुनने का अवसर दिया जाता था, किंतु साथ ही ऐसे व्यक्तियों का भी अभाव नहीं था जो दोनों धर्मावलंबियों से सौहार्द भाव जगाने की आकांक्षा रखते थे। अनेक साधारण मुसलमान ऐसे थे जो एक ओर तो सूफी धर्म की प्रचार–प्रसार में विश्वास रखते थे, तो दूसरी ओर हिन्दू धर्म के आदर्शों को सौजन्य की दृष्टि से देखते थे। प्रेमाख्यान काव्य की रचना का मूलाधार यही भावना है।

▶ धर्मावलंबियों से सौहार्द भाव जगाना

सूफी कवियों ने अपनी रचनाओं में हिन्दू घरों में प्रचलित प्रेम कथाओं को ग्रहण करते हुए आध्यात्मिक प्रेम का निरूपण किया है। आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना के लिये उन्होंने अपने धार्मिक सिद्धान्तों का निरूपण करते हुए भी इन्होंने न तो हिन्दू धर्म की कहीं निन्दा की है और न ही हिन्दू देवी-देवताओं के प्रति अवज्ञा दिखलाई है। इतना ही नहीं, उन्होंने तो हिन्दुओं के आचार-विचार एवं रहन-सहन के प्रति अत्यन्त उदार एवं सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया है। विद्वानों ने सूफी काव्य धारा को अनेक नाम दिये हैं। प्रेम तत्व की प्रधानता के कारण आचार्य शुक्ल ने इसे 'प्रेमाश्रयी शाखा' कहा है। डॉ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने 'प्रेम-कथाओं का साहित्य' नामकरण किया है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'प्रेम-काव्य धारा' और डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त ने 'रोमांटिक कथा-काव्य-परम्परा' के नाम से अभिहित किया है। किन्तु सूफी मत के सिद्धान्तों पर आधारित होने के कारण इसका नाम 'सूफी काव्य-धारा' ही अधिक उपयुक्त है।

▶ आध्यात्मिक प्रेम का निरूपण

3.4.2.1 प्रेमाख्यान काव्य की विशेषताएं

सूफी प्रेम काव्य की परंपरा में अधिकतर मुसलमान कवि ही हुए। केवल पुहकर, काशीराम, प्रेमचन्द्र, मृगेन्द्र आदि हिन्दू कवियों के कुछ नाम मिलते हैं। किन्तु उनकी रचनाओं का कोई विशेष महत्व नहीं है। वास्तव में यह परंपरा भारतीय और इस्लामी संस्कृतियों के सम्मिलन का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करती है। इन कवियों ने हिन्दू धर्म की निन्दा की। वर्णनात्मक काव्य के

लिए दोहा–चौपाई वाली शैली इन्हीं सूफी कवियों ने प्रचलित की, जो गोस्वामी तुलसीदास द्वारा भी गृहीत हुई। यद्यपि उन सब पर फारसी की मसनबी शैली का प्रभाव है, तो भी वे भारतीय प्रभाव से बच नहीं सके। आख्यायिका साहित्य का जो विकास करने में सूफी कवि अग्रगण्य हैं। उनकी परंपरा उतनी ही लोकप्रिय सिद्ध हुई, जितनी संत परंपरा।

▶ भारतीय और इस्लामी संस्कृतियों के सम्मिलन

3.4.2.2 प्रेमाख्यान काव्य के प्रमुख कवि

प्रेमाख्यानक कवि हिन्दू भी हैं और मुसलमान भी। मुसलमान कवि अधिक सशक्त रचनाकर हैं और उनकी रचनाएँ ही अधिक चर्चित है। उनमें प्रमुख कवि है जायसी। अवध में जायस नामक स्थान से संबंधित होने के कारण वे 'जायसी' कहलाए। वे प्रसिद्ध सूफी संत थे और चिश्तिया निज़ामिया की शिष्य परंपरा में सैयद मुहीउद्दीन के शिष्य थे। पहले वे शेरशाह के आश्रम में रहे, फिर गाजीपुर और भोजपुर के महाराज जगत्देव के आश्रय में, और अंत में अमेठी नरेश के आश्रय में रहे। जायसी के आशीर्वाद से अमेठी नरेश को पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ। इससे वे उन्हें बहुत मानते थे। उनकी मृत्यु 1542 के लगभग अमेठी में हुई।

▶ प्रसिद्ध सूफी संत

जायसी के 'पद्मावत्' तक आते-आते हिन्दी प्रेम काव्य परंपरा काफी प्रौढ हो गई प्रतीत होती है। जायसी ने सूफी सिद्धांतों को भारतीय कथा में पिरोया और हिन्दू हृदय को आकर्षित किया। अब तक के सूफी कवियों की रचनाएँ केवल कल्पना पर आधारित थीं। जायसी ने कल्पना के साथ–साथ ऐतिहासिक घटनाओं का समावेश भी किया। चितौड के साथ अलाउद्दीन का संघर्ष होने के कारण 'पद्मावत्' का यथेष्ट प्रचार हुआ। 'पद्मावत्' में चितौड़ के राजा रत्नसेन और सिंहलद्वीप के राजा गंधर्वसेन की पुत्री पद्मावती के प्रेम का वर्णन है।

▶ पद्मावत् में रत्नसेन और पद्मावती के प्रेमकथा

जायसी की भाषा में कहावतें और मुहावरे भी कहीं–कहीं मिलते हैं, किन्तु वे अत्यंत स्वाभाविक रूप में आए हैं। उनकी वाक्य रचना यद्यपि स्वच्छ हैं, किंतु तुलसी की भांति व्यवस्थित नहीं हैं। उन्होंने अधिकतर दो पदों के समासों का प्रयोग किया है, और वह भी फारसी के ढंग पर। अन्य प्रमुख प्रेमाख्यानक कवि और उनके काव्य है- 'लोरकहा या चंदायन': मुल्ला दाउद, 'मधुमालती': मंझन, 'मृगावती' कुतुबन, 'ज्ञानदीप': शेखनवी, 'माधवानल कामकंदला', 'आलम', 'चित्रावलीः उसमान, 'रसरतन' पुष्कर कवि, 'लखमसेन पद्मावती कथा' दामोदर कवि, 'सत्यवती कथा': ईश्वरदास, 'छिताई वार्ता'- नारायण दास, 'हंसावली' असाइत और 'रूप मंजरी': नन्ददास।

▶ दो पदों के समासों का प्रयोग

3.4.3 राम भक्तिकाव्य

भक्ति की धारा उत्तर भारत में आने से पूर्व दक्षिण भारत में पूरी तरह से फैल चुकी थी। वैदिक धर्म के कर्मकाण्ड को न मानने वालों ने वैष्णव धर्म की स्थापना की और भगवान की भक्ति का सहारा लिया गया। ईसा के 500 वर्ष पूर्व श्रीराम और श्रीकृष्ण को ईश्वरावतार के रूप में माना जाने लगा था।

▶ वैष्णव धर्म की स्थापना

राम भक्ति को महानता के शिखर पर लाने का श्रेय स्वामी रामानुजाचार्य को है। इनके सम्प्रदाय में विष्णु या नारायण की उपासना की जाती है। उन्हीं के सम्प्रदाय में राघवानन्द हुए जिनके शिष्य रामानन्द ने सारे देश का भ्रमण कर अपने सम्प्रदाय को बढ़ाने का प्रयास

▶ स्वामी रामानुजाचार्य

▶ तुलसी ने श्रीराम को मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम के रूप में चित्रित

किया। उन्होंने वैकण्ठ में स्थित विष्णु भगवान के स्थान पर इस संसार में अवतरित उनके रूप 'श्रीराम' को अपना आराध्य देव माना।

राम भक्ति का वास्तविक उत्थान गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं, विशेषकर 'रामचरितमानस' में देखने को मिलता है। तुलसी ने श्रीराम को मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम के रूप में चित्रित किया, जो शील, शक्ति और सौन्दर्य के प्रतीक थे। डॉ. रामकुमार वर्मा ने स्पष्ट शब्दों में कहा है- राजनीति की जटिल परिस्थितियों में धर्म की भावना किस प्रकार अपना उत्थान कर सकती है, यह राम काव्य ने स्पष्ट कर दिया।

3.4.3.1 राम भक्तिकाव्य की विशेषताएँ

1. राम का स्वरूपः रामभक्त कवियों के उपास्यदेव राम-विष्णु के अवतार हैं और परम ब्रह्म स्वरूप हैं। वे पाप विनाश और धर्मोत्तर के लिए युग-युग में अवतार लेते हैं। कृष्ण कवियों के कृष्ण ब्रह्म के प्रतीक हैं। गोपियाँ जीवात्मा हैं और स्वयं कृष्ण-भक्त अपने आप पर गोपी का आरोप करके अपने-आपको कृष्ण की सेवा में अर्पित करते हैं। राम विष्णु के अवतार हैं और भक्त कवि मानव रूप में उनका साधक है। इनके राम में शील, शक्ति, सौन्दर्य का समन्वय है। सौन्दर्य में वे त्रिभुवन को लजावन हारे हैं। शक्ति से वे दुष्टों का दलन करते हैं और भक्तों को संकट से मुक्त करते हैं। वे अपने शील-गुण से लोक को आचार की शिक्षा देते हैं। राम-भक्ति परम्परा में रसिकता का उदय हुआ और उसमें सखी 'संप्रदाय' आदि चल निकले पर यह सब कृष्ण भक्ति साहित्य के अनुकरण पर ही हुआ।
2. समन्वयात्मकता- राम काव्य का दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक है। इसमें समन्वय की भावना है। इसमें न केवल राम की उपासना है बल्कि कृष्ण, शिव, गणेश आदि देवताओं की भी स्तुति की गई है। तुलसी ने सेतुबन्ध के अवसर पर राम द्वारा शिव की पूजा करवाई है। यद्यपि रामभक्ति काव्य में रामभक्ति को श्रेष्ठ माना है तो भी उसकी भक्ति भावना अत्यंत उदार है। रामभक्तों का आराध्य सगुण भी है और निर्गुण भी तो भी भगवान का सगुण रूप भक्तिसुलभ है।
3. लोक संग्रह की भावनाः लोक-कल्याण भावना की दृष्टि से भी यह साहित्य अत्यंत उपादेय है। इस साहित्य में जीवन की अनेक उच्चारण अनुभूतियाँ प्रस्तुत की गई हैं। इन्होंने गृहस्थ जीवन की उपेक्षा नहीं की बल्कि लोक-सेवा और आदर्श गृहस्थ राम-सीता को उपस्थित करके जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। राम काव्य का आदर्श पक्ष अत्यंत उच्च है। इस काव्य में जीवन का मूल्यांकन आचार की कसौटी पर किया गया है।
4. भक्ति का स्वरूपः राम का चरित्र त्रिलोकातिशयी है। राम-भक्त कवि राम के शील, शक्ति और सौन्दर्य पर मुग्ध हैं। यही कारण है कि राम-भक्त कवि ने अपने और राम के बीच सेवक-सेव्य भाव को स्वीकार किया है। तुलसीदास का कहना है- राम भक्त कवियों का भक्ति संबंधी दृष्टिकोण अपेक्षाकृत अधिक उदार है। निःसन्देह राम-भक्ति को यहां सर्वश्रेष्ठ बताया गया है, किन्तु अन्य देवी-देवताओं की पूजा की भी यहां अस्वीकृति नहीं है जैसे कि सूर को छोड़कर अन्य पुष्टिमार्गी कवियों में। राम-भक्त कवि ज्ञान और कर्म की अलग-अलग महत्ता स्वीकार करते हुए भक्ति को श्रेष्ठ मानते हैं।
5. रस- रामकथा अत्यंत व्यापक है। उसमें जीवन की विविधताओं का सहज सन्निवेश है।

राम काव्य में सभी रसों का समावेश है किन्तु सेवक-सेव्य भाव की भक्ति होने के कारण निर्वेदजन्य शांत रस की प्रधनता है। राम मर्यादा पुरूषोत्तम हैं और भक्त-कवि भी मर्यादावादी है, कदाचित यही कारण है कि इस साहित्य में श्रृंगार रस के संयोग और वियोग पक्षों का सम्यक परिपाक नहीं हो सका। यह बात अधिकतर तुलसी के साहित्य पर चरितार्थ होती है। आगे चलकर राम-भक्ति साहित्य परम्परा में सखी संप्रदाय में नख-शिख, अष्टयाम आदि रति-उत्तेजक विषयों का वर्णन होने लगा। राम-भक्ति के रसिक संप्रदाय में श्रृंगार रस का यथेष्ट परिपाक हुआ है। तुलसी के साहित्य में, विशेषकर 'रामचरितमानस' में, सभी रसों का समावेश है। युद्ध-वर्णन में वीर और रौद्र रस हैं। राम के ब्रह्मत्व के प्रतिपादन प्रकरणों में अद्‌भुत और भक्ति रस की अच्छी छटा है। राम भक्ति में मधुर रस का समावेशः तुलसी के पूर्व और उनके समय में भी राम-साहित्य में मधुर रस का समावेश हो चुका था किन्तु तुलसी के समय में वह अपने पूर्ण रूप में उभर नहीं सका। तुलसी ने मर्यादा पुरूषोत्तम राम के जिस दुष्ट दमनकारी रूप की कल्पना की थी वह कुछ समय के बाद धीमी पड़ गई। 16वीं शताब्दी के बाद के साहित्य में कृष्ण भक्ति काव्य की प्रेम-लीलाओं के समान राम-साहित्य छबीले राम की रसिकतापूर्ण लीलाओं से भर गया। इसमें राम और जानकी के प्रणय, विलास, हास, वन और जल विहारों तथा काम-केलियों का निःशंक भाव से चित्रण किया जाने लगा। तुलसी जितनी दृढ़ता के साथ मर्यादावाद का पालन करते रहे उसके परवर्ती साहित्यकारों ने प्रतिक्रियात्मक रूप में मर्यादा की उनकी अवहेलना कर राम-भक्ति साहित्य में रसिकता का समावेश किया।

6. काव्य शैलीः सगुण परम्परा के कवि या तो स्वयं विद्वान थे अथवा विद्वानों की सत्संगति में साहित्य के धर्मों के संबंध में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर चुके थे। अलंकार-शास्त्र की अवहेलना इनमें दृष्टिगोचर नहीं होती है। इनका अनेक काव्य शैलियों पर अधिकार था। राम-काव्य में सब शैलियों की रचनाएं मिलती हैं। 'रामचरितमानस' और 'अष्ट याम' में वीरगाथाओं की प्रबंध शैली मिलती है। मंगल काव्य का उल्लेख मिलता है।
7. छन्द- रचनाभेद, भाषाभेद, विचारभेद, अलंकारभेद के साथ राम काव्य में छन्दभेद भी पाया जाता है। वीरगाथाओं के छप्पय, सन्त काव्य के दोहे, प्रेम काव्य के दोहे, चैपाई और इनके अतिरिक्त कुण्डलिया, सोरठा, सवैया, घनाक्षरी, तोमर, त्रिभंगी आदि छन्द प्रयुक्त हुए हैं। दोहा, चैपाई का मुख्य प्रयोग हुआ है। तुलसी ने इनका प्रयोग अधिकारपूर्वक किया है। केशव ने अनेक छन्दों में कला का प्रदर्शन किया है, परन्तु उनमें भावानुकूलता नहीं है।
8. अलंकार- राम भक्त-कवि पंडित हैं। इनमें अलंकारशास्त्र के प्रति अवहेलना नहीं है। जहां इन्होंने विविध छन्दों का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है। केशव को छोड़कार इनमें से किसी ने भी शब्दालंकारों का आदर नहीं किया। वैसे तो तुलसी-काव्य में प्रायः सभी अलंकार मिल जाते हैं, परन्तु वे उपमा और रूपक के लिए विशेष प्रसिद्ध हैं।
9. भाषा- राम काव्य की भाषा प्रधानतः अवधी है। केशव की राम-चन्द्रिका में ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। बाद के राम-भक्ति के रसिक संप्रदाय के कवियों ने प्रायः ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। तुलसी ने अवधी तथा ब्रज दोनों भाषाओं का सफल प्रयोग किया है। राम-काव्य में भोजपुरी, राजस्थानी, संस्कृत और फारसी भाषाओं के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। तुलसी ने भाषा का परिष्कृत रूप प्रस्तुत किया है।

3.4.3.1 प्रमुख राम भक्ति कवि

रामभक्ति का पूर्ण परिपाक गोस्वामी तुलसीदास में आकर प्रकट हुआ और उसके बाद रामभक्ति काव्यधारा साहित्यिक रूप में स्पष्ट होने लगे। गोस्वमी तुलसीदास की जन्म तिथि के बारे में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। विलसन और तासी इनका जन्म संवत् 1600 मानते हैं। 'गोसाई चरित' और बाबा रघुनाथदास रचति 'तुलसी चरित' के अनुसार यह समय सं. 1544 ठहरता है। इनकी मृत्यु सं. 1680 में हुई। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की विज्ञाप्ति के अनुसार तुलसीदास ने 37 ग्रंथ लिखे थे, परंतु उनमें से केवल 12 ही प्रामाणिक माने जाते हैं:– श्रीरामचरितमानस, वैराग्य संदीपनी, रामललानहछू, बरवै रामायण, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, दोहावली, कवितावली, गीतावली, विनयपत्रिका आदि। तुलसी को कुछ लोग 'स्मार्त वैष्णव' और कुछ 'रामानन्दी संप्रदाय' का बताते हैं। अधिकांश विद्वान इन्हें विशिष्टाद्वैतवादी कहते हैं। ऐसा माननेवालों में आचार्य शुक्ल, रामकुमार वर्मा आदि प्रमुख है।

► श्रीरामचरितमानस तुलसी की श्रेष्ठ रचना

वास्तव में प्रत्येक शैली पर गोस्वामी जी को पूर्ण अधिकार था। वे केवल नाटक या रूपक की रचना न कर सके। इसके अतिरिक्त उस समय वीर रचनाओं की परंपरा में पोषित द्वित्ववर्ण वाली एक विशेष भाषा थी जिसका क्षेत्र अत्यंत संकुचित था। तुलसीदास ने ब्रज और अवधी पर समान रूप से अधिकार प्रकट किया। गोस्वामी जी की भाषा परिमार्जित और साहित्यिक है। उन्होंने भावमय, सरस एवं कोमल संस्कृत शब्दों का चयन किया। उनका शब्द चयन भावानुकूल और विषयानुकूल है। उनकी भाषा में भोजपुरी, बुन्देलखंडी और सर्वप्रचलित अरबी-फारसी शब्द भी मिल जाते हैं। उससे उनकी भाषा की अभिव्यंजना शक्ति बढी है। उनकी भाषा में सहज और स्वाभाविक रूप से अलंकार का प्रयोग हुआ है। वैसे तो उनकी रचनाएं नवरस सिद्ध हैं, किन्तु श्रृंगार का जितना शिष्ट मर्यादा पूर्ण और मनोवैज्ञानिक वर्णन उनकी रचनाओं में मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इनके अलावा अन्य कवियों में अग्रदास, प्राणचन्द्र, हृदयराम, नाभादास आदि प्रमुख हैं।

► भावानुकूल और विषयानुकूल शब्द चयन

3.4.4 कृष्ण भक्ति काव्य

श्री चैतन्य महाप्रभु और वल्लभाचार्य ने भगवान विष्णु के अवतार श्री कृष्ण को भक्ति का आधार बनाया। उनकी भक्ति 'भागवत पुराण' पर आधारित थी। इस भक्ति में ज्ञान की अपेक्षा प्रेम को अधिक महत्व दिया गया। आत्म चिन्तन की अपेक्षा आत्म समर्पण पर अधिक बल दिया गया। वल्लभाचार्य ने श्री कृष्ण को 'परब्रह्म' और 'दिव्य गुण सम्पन्न' माना। उनके लोक को वैकुंठ माना जिसके अन्तर्गत वृन्दावन, यमुना, गोवर्धन, सभी वे स्थल आते हैं जहां श्री कृष्ण ने अलक्ष भाव से गो चारण और रासलीला की थी। कृष्ण भक्त-कवियों ने आत्मा और परमात्मा में सखी-सखा भाव माना।

► आत्म समर्पण पर अधिक बल

हिन्दी साहित्य में कृष्ण भक्ति-काव्य की रचना आदिकाल में विद्यापति पदावली से आरम्भ हुई। उनकी भक्ति पर श्रंगार का भी गहरा रंग था। अतः भक्तिकाल में सूरदास को ही कृष्ण भक्ति-काव्य का प्रवर्तक मानना चाहिए। इनकी प्रसिद्ध रचना 'सूर सागर' श्रीमद भागवत पर ही आधारित है। सूरदास के अतिरिक्त कृष्ण भक्ति-शाखा के अन्य कवि अष्टछाप के आठ कवि आते हैं। इनमें से केवल नन्ददास ही अधिक प्रसिद्ध हुए। इनकी रचना 'भँवर गीत' में ज्ञान पर प्रेम की विजय दिखा कर कृष्ण भक्ति के सिद्धतों का प्रभावी ढंग से चित्रण हुआ है। कृष्ण भक्ति शाखा में भगवान श्री कृष्ण को भक्ति का आधार मान कर उनके प्रेम को महत्व दिया गया है।

► कृष्ण भक्ति-काव्य की रचना आदिकाल में विद्यापति पदावली से आरम्भ

3.4.4.1 कृष्ण भक्तिकाव्य की विशेषताएँ

1. श्रीकृष्ण को पूर्ण ब्रह्म माननाः सभी कृष्ण भक्त कवि श्रीकृष्ण को भगवान विष्णु का सोलह कला सम्पूर्ण अवतार मानते हैं। उनके श्रीकृष्ण पूर्ण ब्रह्म है जो इस सारी सृष्टि के निर्माता हैं तथा संसार की प्रत्येक वस्तु उन्हीं का अभिन्न अंग है। कृष्ण भक्त कवियों ने श्रीकृष्ण के माधुर्य रूप को ही अपनाया।
2. श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णनः श्रीकृष्ण के बाल या युवा रूप का सुन्दर चित्राण किया है, इन लीलाओं में बालगोपाल की वात्सल्यपूर्ण लीलाओं तथा माधुर्य भावपूर्ण लीलाओं की प्रधानता रही। इन कवियों में प्रेम वर्णन कुछ चुने हुए प्रसंगों तक सीमित रहा।
3. संगीतात्मकताः श्रीकृष्ण की लीलाओं के वर्णन में संगीतात्मकता की अधिकता पाई जाती है। इससे रीति काव्य का सुन्दर विकास हुआ। इसी में अनेक राग रागनियां पाई जाती हैं। हरिदास, सूरदास तथा मीरा के पदों में संगीतात्मकता की सुन्दर छाप मिलती है और आज भी संगीत के क्षेत्र में इन पदों का बहुत महत्व है। वास्तव में श्रीकृष्ण का चरित्र ही कुछ इतना विचित्र है कि इसके वर्णन में साधरणतया संगीतात्मकता का तत्व आ गया है।
4. श्रृंगार रस की प्रधनताः कृष्ण भक्त-कवियों ने माधुर्य भक्ति के कारण अपने काव्य में श्रृंगार रस का वर्णन प्रमुख रूप से किया है। गोपियों के संयोग और वियोग का बड़ा ही सुन्दर और स्वाभाविक वर्णन कृष्ण भक्त कवियों ने किया है। संयोग में श्रीकृष्ण राधा का सौन्दर्य, गोपी प्रेम, चीर हरण, दान लीला, रास लीला आदि का वर्णन है। यह वर्णन स्वाभाविक और वासना रहित है। इसमें अलौकिकता पाई जाती है। वियोग वर्णन का सुन्दर उदाहरण सूर के 'भ्रमरगीत' और नन्ददास के 'भँवर गीत' में देखा जा सकता है। मीरा का वियोग वर्णन भी उच्चकोटि का बन पड़ा है।
5. विषय-वस्तु की मौलिकताः भक्तिकालीन कृष्ण भक्त कवियों ने 'भागवत् पुराण' को ही आधार माना किन्तु इससें वातावरण के अनुकूल कुछ मौलिकता दिखाने का भी प्रयत्न किया। उदाहरण के लिए 'भागवत्' में भी श्रीकृष्ण आरम्भ से लेकर अन्त तक अलौकिकता लिए पाए जाते है। जबकि कृष्ण भक्त कवियों ने उनका नाम भी स्पष्टः 'राधा' लिख दिया है। अतः हम कह सकते हैं कि हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने विद्यापति और जयदेव को आधर मानते हुए अपनी कल्पना शक्ति का पूर्ण प्रयोग किया है और अपने समय के वातावरण के अनुसार नये प्रसंगों को भी जोड़ दिया है।
6. प्रकृति चित्रणः कृष्ण काव्य भाव प्रधान है इसी कारण इसमें प्रकृति चित्रण स्वतन्त्र रूप से नहीं हुआ। प्रकृति के जो सुन्दर चित्र देखने को मिलते हैं वे केवल पृष्ठभूमि अथवा उद्दीपन के रूप में चित्रित हुए हैं। पात्र के भावों को बढ़ाने (उद्दीप्त करने) के लिए प्रकृति का उसी प्रकार का रूप दिखाया गया है। अर्थात् प्रकृति चित्र भावानुकूल ही हुआ है। प्रकृति के कोमल-कठोर, मनोहर-भयानक दोनों रूपों का चित्रण कृष्ण काव्य में देखने को मिलता है।
7. सामाजिक पक्षः कृष्ण भक्त-कवियों ने श्रीकृष्ण की लीलाओं के वर्णन के साथ ही उस समय के सामाजिक पक्ष को भी नहीं छोड़ा। कृष्ण भक्त-कवियों ने उस समय

की धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक दशा का भी अपने काव्य में समावेश किया है। यथा 'भ्रमर गीत' और 'भँवर गीत' के उद्धव गोपी संवाद में अलखवादी, घमण्डी, शरीर को बेकार कष्ट देकर साधना करने वालों का गोपियों ने परिहास उड़ाया है। वर्णाश्रम का पतन धर्मिक विडम्बनाओं और सामाजिक कुरीतियों का चित्रण भी कृष्ण काव्य में देखने को मिलता है।

3.4.4.2 प्रमुख कृष्ण भक्ति कवि

कृष्णभक्ति काव्य में भक्ति की परंपरा में सबसे अधिक श्रेय सूरदास को है। सूरदास विट्ठलनाथ द्वारा स्थापित अष्टछाप के सर्वप्रथम और सबसे अधिक प्रसिद्ध कवि है। उनका काल निर्णय संदिग्ध है। वैसे वे महाप्रभु वल्लभाचार्य के जीवन के अंत समय में विद्यमान थे। अनुमान है कि उनका जन्म 1483 के लगभग और मृत्यु 1585 के लगभग हुई। गुसाई हरिराय, भक्तमाल, चौरासी वैष्णवन की वार्ता, आइने अकबरी, गोसाई चरित आदि में उनके संबंध में जो उल्लेख मिलते हैं, उनके आधार पर निर्विवाद रूप में यह कहा जा सकता है कि सूरदास गायक थे, गऊघाट पर निवास करते थे, विनय के पद गाते थे, पुष्टिमार्ग में दीक्षित थे अंधे थे।

▶ अंधे कवि

सूर के ग्रंथों में 'सूरदास', 'सूर सारावली' और 'साहित्य लहरी' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'सूरसारावली' और 'साहित्य लहरी' सूरदासकृत है या नहीं इस संबंध में विद्वानों में मतभेद है। सूरसागर का आधार भागवत है। उसमें 12 स्कन्ध हैं, जिनमें क्रमशः विनय, भक्ति, विष्णु के अवतारों तथा अन्य पौराणिक कथाओं का निरूपण, रामावतार और श्रीकृष्णचरित और ग्यारहवें तथा बारहवें अध्यायों में पद है। सूरदार ने भगवान को आधार अवश्य बनाया है, किन्तु उनमें मौलिकता का आभव नहीं है। भाषा और भाव की दृष्टि से सूर अत्यंत उच्चकोटि के कवि हैं। उन्होंने ब्रजभाषा में मुक्तक काव्य और गीति तत्व के सहारे कृष्ण काव्य की एक विशेष परंपरा को जन्म दिया। उसमें खण्डकाव्य में प्रबन्धात्मकता का भी अद्भुत मिश्रण है। उनके गीतों में आत्मनिष्ठा और आत्मनुभूति की तीव्रता और एकात्मकता है तथा संगीतात्मकता और गेय हैं। इनके अलावा अन्य कवियों में नंददास, कृष्णदास, परमानंद, कुंभनदास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, हितहरिवंश, गदाधर भट्ट, मीराबाई, स्वामी हरिदास, सूरदास-मदनमोहन, श्रीभट्ट, व्यास जी, रसखान, ध्रुवदास, चैतन्य महाप्रभु आदि विद्यमान हैं।

▶ खण्डकाव्य में प्रबन्धात्मकता का भी अद्भुत मिश्रण

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

संक्षेप में कहे तो निर्गुण और सगुण दोनों में गुरु को अत्यंत महत्व दिया गया है। गुरु ही साधक को ईश्वर तक पहुंचाने का साधन है। शैतान अथव माया के व्यामघातों से गुरु की कृपा से ही बचाव होता है। गुरु ही मुक्ति प्राप्ति का समवायी कारक है। 'गुरु बिना होई न ग्यान' और ग्यान के बिना मुक्ति असंभव है। दोनों में प्रेम का उच्चस्थान प्रतिपादित किया गया है। संतों के यहां प्रेम व्यक्तिगत साधना में व्यवहृत है जबकि सूफियों में लौकिक प्रेम के द्वारा अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना है। निर्गुण में प्रेम मुख्य है और सगुण में गौण। दोनों साधक है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. संत काव्य परंपरा पर टिप्पणी लिखिए।
2. प्रेमाख्यान काव्य का परिचय दीजिए।
3. राम भक्तिकाव्य पर टिप्पणी लिखिए।
4. कृष्ण भक्ति काव्य का परिचय दीजिए।
5. कृष्णभक्ति काव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
6. संत एवं प्रेमाख्यान कवियों का परिचय दीजिए।
7. राम एवं कृष्ण भक्त कवियों पर आलेख तैयार कीजिए।
8. रामभक्ति काव्य की विशेषता पर टिप्पणी तैयार कीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी भाषा की संरचना - डॉ. भोलानाथ तिवारी

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
2. हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. भोलानाथ तिवारी
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

रीतिकाल

BLOCK-04

Block Content

Unit 1: रीतिकाल-सीमांकन, नामकरण

Unit 2: रीतिकाल- राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

Unit 3: रीति शब्द की व्याख्या, रीतिकाव्य की मूल प्रवृत्तियाँ

Unit 4: रीतिकवियों के वर्ग- रीतिसिद्ध, रीतिबद्ध, रीतिमुक्त

इकाई : 1

रीतिकाल-सीमांकन, नामकरण

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- हिन्दी साहित्य के रीतिकाल से अवगत होता है
- रीतिकाल के समय सीमा से परिचित होता है
- रीतिकाल के नामकरण से अवगत होता है

Background / पृष्ठभूमि

रीतिकाल में रस की दृष्टि से, श्रृंगार की प्रवृत्ति हिन्दी काव्य जगत की सर्व प्रधान और सर्व व्यापक प्रवृत्ति थी। श्रृंगार की इस सर्वव्यापी भावना के मूल में तत्कालीन परिस्थितियाँ पूर्ण योग दे रही थीं। वह मुगल साम्राज्य की अवनति और विनाश का काल था। परन्तु इससे पूर्व शक्तिशाली मुगल साम्राज्य देश में एकछत्र शान्ति स्थापित कर चुका था। छोटे–बडे राजवाडे आन्तरिक रूप में स्वतंत्र थे। मुगल शासकों की कलाप्रियता से विभिन्न कलाशैलियों को अतीव प्रोत्साहन मिला था। वह सौंदर्योपासना का युग था। अकबर, जहाँगीर और शाहजहां के समय में काव्य, कला और संगीत की पर्याप्त उन्नति हुई थी। परंतु औरंगजेब के धार्मिक पक्षपात ने एक बार फिर देश की शान्ति को भंग कर दिया। इससे हिन्दू-मुसलमानों में पुनः अलगाव की भावना उत्पन्न हुई। किन्तु उस समय दोनों ही जातियाँ जर्जर हो रही थीं। इसका प्रभाव साहित्य, कला, संगीत आदि पर भी पड़ा।

Keywords / मुख्य बिन्दु

अलंकृतकाल, विलासप्रियता, मुगल साम्राज्य, रसग्राही पाठक

Discussion / चर्चा

रीतिकालीन कवियों के सामने भक्तिकाल का समृद्ध साहित्य था। कबीर, सूर, तुलसी, नन्ददास आदि कवियों के निष्काम हृदय से निस्तृत भाव कलात्मक सौन्दर्य की अपेक्षा कल्याण भावना से अधिक ओत–प्रोत थे। भारतीय जनता को उनकी रचनाओं से अवलंबन दिया, उनके जीवन में मर्यादा, आशा और विश्वास की त्रिवेणी प्रवाहित कर दी। ऐसे साहित्य में अनावश्यक शब्द जाल नहीं है, फिर भी अभिव्यक्ति कौशल स्वाभाविकता से समन्वित होकर रसग्राही पाठक को मग्न करने में समर्थ है।

4.1.1 रीतिकाल-सीमांकन

▶ रीतिकाल- हिन्दी साहित्य का उत्तर मध्यकाल

रीतिकाल (1658-1857) हिन्दी साहित्य का उत्तर मध्यकाल कहलाता है। इस काल के काव्य की प्रमुख धारा का विकास कविता की रीति के आधार पर हुआ। रीतिकाल समृद्धि और विलासिता का काल है। साधना का काल 'भक्तियुग' से यह इसी बात में भिन्नता रखता है कि इसमें कोरी विलासिता ही उपास्य बन गयी, वैराग्यपूर्ण साधना का समादर न रहा। सजीव–श्रृंगार की एक अदम्य लिप्सा इस युग के साहित्य में प्रतिबिंबित होती है।

▶ मुगल बादशाह शाहजहाँ के शासन की समाप्ति

रीतिकाल 1700 से 1900 तक का काल है। मोटे तौर पर मुगल बादशाह शाहजहाँ के शासन की समाप्ति और औरंगजेब के शासन के प्रारंभ (1658 ई.) से लेकर प्रथम स्वाधीनता संग्राम (1857 ई.) तक यह काल माना जाता है। इस युग में भक्तिकालीन काव्यधाराओं, जैसे संतकाव्य, प्रेमाख्यानकाव्य, रामभक्तिकाव्य, कृष्णभक्तिकाव्य, वीरकाव्य आदि का विकास हुआ। परंतु सबसे अधिक महत्व उसी रीतिकाव्य को प्राप्त हुआ, जो अलंकारों, रसों, नायिका भेदों, शब्द शक्तियों, ध्वनि भेदों आदि के आधार पर लिखा गया। यह प्रवृत्ति इस युग की नवीन चेतना के रूप में जाग्रत हुई।

4.1.2 नामकरण

▶ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा 'रीतिकाल' नामकरण

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने संवत् 1700 वि. से 1900 वि. तक के काल खण्ड को रीतिकाल कहा है। मध्यकाल को जिन दो कालखंडों में बांटा गया है उनके नाम हैं पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल। पूर्व मध्यकाल को भक्तिकाल और उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल कहा गया है। रीतिकाल के लिए कुछ अन्य नाम दिए गए हैं वे हैं, मिश्र बन्धुओं द्वारा 'अलंकृतकाल', विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा 'श्रृंगारकाल', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा 'रीतिकाल'।

▶ इस काल में लक्षण ग्रंथों की रचना प्रचुर मात्रा में हुई

मिश्रबन्धुओं का तर्क यह है कि इस काल में कविता को अलंकृत करने पर अधिक बल दिया गया है, इसलिए इसका नाम 'अलंकृतकाल' होना चाहिए। किन्तु इस काल में लक्षण ग्रंथों की रचना प्रचुर मात्रा में हुई है तथा अलंकृतकाल कहने से इस प्रवृत्ति का बोध नहीं हो पाता अतः यह समीचीन नहीं है। 'श्रृंगार काल' कहे जाने के पक्ष में यह तर्क दिया गया है कि इस काल के कवियों की व्यापक प्रवृत्ति श्रृंगार वर्णन की थी, किन्तु श्रृंगारी कवियों ने भी काव्यांग निरूपण की ओर रुचि दिखाई है। ऐसी स्थिति में केवल श्रृंगार काल कहने से रीतिकाल की संपूर्ण कविता का बोध नहीं हो पाता।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

विभिन्न विद्वानों ने इस काल को अनेक नामों से पुकारा है, जैसे रीतिकाल, अलंकृत काल, कला काल, श्रृंगार काल आदि। इस काल में अलंकरण, रीति–शैली, कलात्मकता और श्रृंगार भावना की प्रधानता रही है। इस युग में उक्त चारों प्रवृत्तियों का इतना अधिक समन्वय और संतुलन देखा जा सकता है कि उनमें किसी एक के आधार पर ही इस युग का नामकरण किया जा सकता है। आचार्य शुक्ल का दिया हुआ नाम 'रीतिकाल' यद्यपि तत्कालीन लक्षण उदाहरण शैली की प्रमुखता को तो व्यक्त करता है परन्तु रीतिबद्ध शैली से भिन्न रचनाएँ इस नाम द्वारा एक प्रकार से उपेक्षित रह जाती है। 'श्रृंगारकाल' नामकरण तत्कालीन संपूर्ण कवियों को अपने भीतर समेट कर चलता है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. हिन्दी साहित्य के रीतिकाल के उदय को लेकर टिप्पणी तैयार कीजिए।
2. रीतिकाल के समय सीमा को परिचित कराइए।
3. रीतिकाल के नामकरण पर आलेख लिखिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी भाषा की संरचना - डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी साहित्य का आदिकाल - आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी
3. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
5. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
2. हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. भोलानाथ तिवारी
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

इकाई : 2

रीतिकाल- राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- रीतिकालीन राजनैतिक परिस्थितियों से अवगत होता है
- रीतिकालीन सामाजिक परिस्थितियों से अवगत होता है
- रीतिकालीन सांस्कृतिक परिस्थितियों से अवगत होता है

Background / पृष्ठभूमि

समय की गति का चक्र सदैव अपने वेग से चलायमान रहता है। भारत की जो परिस्थिति भक्तिकाल में थी वह रीतिकाल के प्रारंभ तक बहुत परिवर्तित हो गई। भय ने प्रेम का स्थान ग्रहण किया। असहिष्णुता ने सहिष्णुता को जन्म दिया। धार्मिक विरोध ने एकता के लिए स्थान सुसज्जित कर दिया। जाति और वर्ण भेद के काले रंगों के बीच यवन हृदय में भी एक विशेष परिवर्तन समुपस्थित हुआ। उन्होंने अपने विरोध हिन्दुओं से तलवारें लड़ाने के बजाय, हृदय मिलाना अधिक उपयुक्त और उपादेय समझा। रीतिकाल के उदयकाल तक भक्तों के कंठ से निस्सृत उपदेश प्रभाव हीन हो चले थे। कबीर और जायसी ने जिस लक्ष्य के पीछे इतना परिश्रम तथा उद्योग किया था वह राजाओं की दुधारी नीति के कारण स्वयमेव पूर्ण हो चला था। यवन-सम्राटों ने तलवार से देश पर विजय प्राप्त कर लेने के पश्चात् हृदयों पर भी विजय प्राप्त किया। फलतः धर्मगान निष्फल और सार हीन हो चले।

Keywords / मुख्य बिन्दु

रीतिकाल के उदयकाल, यवन-सम्राट, दुधारी नीति, मुगल साम्राज्य

Discussion / चर्चा

रीतिकाल के विकास में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का महत्वपूर्ण योग रहा है। वस्तुतः ये परिस्थितियाँ इस काल में काव्य सर्जन के अनुकूल थी। इस समय की राजनीतिक उथल-पुथल और सत्ता एवं वैभव की क्षणभंगुरता ने जीवन के दो अतिरेकपूर्ण दृष्टिकोण विकसित करने में सहायता दी। एक ने जीवन के प्रति पूर्ण विरक्ति और त्याग का भाव जाग्रित किया, तो दूसरे ने पूर्ण भोग का दृष्टिकोण।

4.2.1 रीतिकालीन राजनैतिक परिस्थितियाँ

रीतिकाल ने मुगलों का वैभव काल, पराभव काल एवं अंग्रेजों का उदयकाल देखा है। शाहजहां ने ताजमहल एवं मयूरसिंहासन जैसे वैभव के प्रतीक निर्मित कराए किन्तु 1658 ई. में उनके पुत्रों औरंगजेब और दाराशिकोह में सत्ता संघर्ष प्रारंभ हो गया। दारा की हत्या कर औरंगजेब ने सत्ता पर अधिकार किया, किन्तु उसकी धार्मिक असहिष्णुता एवं अहम्मन्यता के कारण जागीरदारों एवं हिन्दू राजाओं ने उपद्रव प्रारंभ कर दिए। उसके शासन का अधिकांश समय इन उपद्रवों को दबाने में ही व्यतीत हुआ। 1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु के बाद उनका द्वितीय पुत्र शाहआलम गद्दी पर बैठा और 1712 ई से मुगल साम्राज्य का पतन प्रारंभ हो गया। अगले 50 वर्ष तक अस्थिरता रही। छोटे–छोटे जागीदारों ने भी अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया। विलासवृत्ति में बढोत्तरी हुई, केन्द्रीय सत्ता की पकड ढीली हो गई। 1738 ई. में नादिरशाह के आक्रमण ने मुगल साम्राज्य की नींव हिला दी और रही–सही कसर 1761 ई में अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण ने पूरी कर दी। विदेशी व्यापारियों विशेषतः अंग्रेजों ने इस स्थिति का पूरा लाभ उठाया और धीरे–धीरे शक्ति संचय करके वे 1803 ई. तक लगभग समस्त उत्तरी भारत पर अपना आधिपत्य जमा बैठे। वास्तविक सत्ता अंग्रेजों के हाथ में आ गई और मुगल सम्राट नाममात्र के शासक रह गए।

▶ धार्मिक असहिष्णुता एवं अहम्मन्यता का समय

4.2.2 रीतिकालीन सामाजिक परिस्थितियाँ

सामंतवादी प्रवृत्ति का बोलचाल इस काल में था और सामन्तवाद के दोष सर्वत्र व्याप्त थे। एक ओर विलासी शासकों, सामन्तों, अधिकारियों एवं मनसबदारों का बोलवाला था तो दूसरी ओर गरीब जनता पिस रही थी। विलासिता की बढती प्रवृत्ति के कारण नारी को संपत्ति माना जाने लगा। विलास के उपकरणों का संग्रह करना एवं सुरा-सुन्दरी में लीन रहना उच्च वर्ग के जीवन का एकमात्र लक्ष्य बन गया था। मध्यम वर्ग भी उन्हीं के अनुकरण में लीन रहता था। किसी की कन्या का बलात् अपहरण कर लेना उच्च वर्ग के लिए सामान्य बात थी। अभिजात वर्ग के हरम सुंदरी नारियों एवं रक्षिताओं से भरे रहते थे फिर भी वे वेश्यागमन को ही जीवन का परम सुख मानते थे। समाज में कामवृत्ति की प्रधानता थी। काम कला की शिक्षा देने वाले घटिया शिक्षक भी इसी काल में प्रचुरता से हुए। समाज का नैतिक अंकुश शिथिल हो गया था एवं विलासवृत्ति की प्रधानता सर्वत्र व्याप्त थी।

▶ विलासिता की बढती प्रवृत्ति

4.2.3 रीतिकालीन सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

अकबर, जहांगीर एवं शाहजहां की उदार नीति के कारण हिन्दू–मुस्लिम संस्कृतियों में जो समन्वय हुआ था वह औरंगजेब की कट्टर धार्मिक नीति के कारण छिन्न–भिन्न हो गया। मन्दिरों, मठों के पीठाधीश भी लोभी प्रवृत्ति के कारण राजाओं और सेठों को गुरुदीक्षा देकर भौतिक लाभ प्राप्त कर रहे थे। राम–कृष्ण की लीलाओं में अपने विलासी जीवन की संगति खोजी जा रही थी। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्म के मूलभूत सिद्धांतों से दूर हटकर कर्मकाण्ड एवं बाह्याडंबरों तक सीमित रह गए थे। लोग अपनी विलासी मनोवृत्तियों को पूर्ण करने की मनोकामना से हिन्दू मंदिरों एवं पीरों के तकियों पर जाने लगे थे। धर्म स्थान भ्रष्टाचार एवं पापाचार के केन्द्र बन गए थे। जनता के अंधविश्वास का लाभ मुल्ला–मौलवी तथा पंडित–पुरोहित उठा रहे थे। अहिन्दी भाषी प्रान्तों में निवास कर रहे संत अब भी नैतिकता के ध्वजवाहक बने हुए थे किन्तु उनका प्रभाव उत्तर भारत में न था।

▶ हिन्दू–मुस्लिम संस्कृतियों में समन्वय भाव

▶ चित्रकला, स्थापत्यकला एवं संगीत कला का विशिष्ट स्थान

इस काल में चित्रकला, स्थापत्यकला एवं संगीत कला का विशिष्ट स्थान रहा। मुगलों की राजकीय भाषा फारसी थी, किन्तु काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा प्रतिष्ठित थी। इस युग की चित्रकला राजसी ठाठबाट तथा जनजीवन दोनों का चित्रण करती दिखाई पडती है। राजस्थानी शैली एवं कांगडा शैली के चित्रों में 'रागमाला' एवं राधाकृष्ण की लीलाओं, लोकगाथाओं, महाभारत की कथाओं का चित्रण हुआ है। शाहजहां के द्वारा बनवाई गई इमारतों में सौंदर्य का समावेश हुआ है। आगरा का ताजमहल तथा दिल्ली के लाल किले का दीवाने खास इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। कवियों एवं कलाकारों को राजाश्रय इस काल में खूब मिला, जिससे साहित्य और कला का बहुमुखी विकास हुआ।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

जहाँ तक सामाजिक पक्ष का संबंध है, मध्ययुग का समाज सामन्तवादी पद्धति पर आधारित था, जिसमें सम्राट शीर्ष पर था, जिसके बाद उसके अन्तर्गत राज, अधिकारी और सामन्त थे, जिन्हें समाज में विशेष अधिकार और सम्मान प्राप्त थे। कवियों को अपने इन आश्रयदाताओं की रुचि के अनुसार या उन्हें प्रभावित करनेवाला काव्य लिखना आवश्यक था, जिससे उनकी ऐहिक संतुष्टि होती थी और प्रतिभा का भी कम से कम एक क्षेत्र में विकास होता रहता था। मध्यकाल के अमीर और सामंत अत्यंत विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। मुगलकालीन भारतीय समाज के जीवन का एक पक्ष रीतिकाव्य के सौंदर्य और विलासपूर्ण चित्रण को प्रेरणा देनेवाला था। परन्तु इसका दूसरा पक्ष जन साधारण का है। नैतिकता की दृष्टि से जन साधारण का चरित्र इन विलासी दरबारियों की अपेक्षा कहीं अच्छा था, उस पर भक्तिकाल का प्रभाव था।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. रीतिकालीन परिस्थितयों का परिचय दीजिए।
2. रीतिकालीन राजनैतिक परिस्थितियों पर टिप्पणी तैयार कीजिए।
3. रीतिकालीन सामाजिक परिस्थितियों पर आलेख तैयार कीजिए।
4. रीतिकालीन सांस्कृतिक परिस्थितियों को व्यक्त कीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी भाषा की संरचना - डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी साहित्य का आदिकाल - आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी
3. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
5. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ.शिवकुमार शर्मा

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
2. हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. भोलानाथ तिवारी
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

इकाई : 3

रीति शब्द की व्याख्या, रीतिकाव्य का लक्षण, रीतिकाव्य की मूल प्रवृत्तियाँ

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- रीति शब्द की व्याख्याओं से परिचित होता है
- रीतिकाव्य के लक्षण से अवगत होता है
- रीतिकाव्य की मूल प्रवृत्तियों से परिचित होता है

Background / पृष्ठभूमि

रीति का प्रयोग हिन्दी में प्रायः लक्षण ग्रंथों के लिए होता है जिन ग्रंथों में काव्य के विभिन्न अंगों का लक्षण व उदाहरण सहित विवेचन होता है। वैज्ञानिक दृष्टि से जिस विधान के अनुसार यह विवेचन होता है उसे रीति शास्त्र कहते हैं। जिस ग्रंथों में रचना संबंधी नियमों का विवेचन हो वह रीति ग्रंथ और जिस काव्य की रचना इन नियमों से आबद्ध हो वह रीति काव्य है।

Keywords / मुख्य बिन्दु

काव्य संप्रदाय, काव्य की आत्मा, नायक-नायिका भेद, रूप लिप्सा

Discussion / चर्चा

अपने आश्रयदाताओं की रुचि के कारण रीतिकालीन साहित्य का उदय हुआ। संस्कृत साहित्य के लक्षण ग्रंथों से प्रेरित होकर विधि साहित्य लिखा गया था। दरबारी संस्कृति होने के कारण जनता हताश और निराश हो गयी थी अतः अपनी निराशा को दूर करने के लिए रीति साहित्य का उदय हुआ।

4.3.1 रीति शब्द की व्याख्या

प्राचीन संस्कृत आचार्यों ने काव्य की आत्मा खोजने के लिए छः काव्य संप्रदायों की स्थापना की थी– रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति ध्वनि और औचित्य। विभिन्न विद्वानों ने इन्हीं को अलग–अलग काव्य की आत्मा या प्रमुख तत्व के रूप में ग्रहण किया था। हिन्दी साहित्य के श्रृंगार काल में इनमें से 'रीति' संप्रदाय की प्रमुखता रही थी। इसलिए सबसे पहले हमें 'रीति'

विशिष्ट पदरचना रीति

के अर्थ को समझ लेना चाहिए। इन्हीं में एक संप्रदाय रीति–संप्रदाय है, जो 'रीति' मार्ग या शैली को काव्य की आत्मा मानता है। इसके अनुसार 'रीति' विशिष्ट विलक्षण या चमत्कारिक पद रचना है।

परन्तु जब हम हिन्दी साहित्य के अंतर्गत 'रीति' शब्द का व्यवहार करते हैं, तब हमारा तात्पर्य इस प्रकार की विशिष्ट पद–रचना से नहीं होता। अतः हिन्दी में 'रीति' काव्य का एक अपना विशिष्ट अर्थ है–'लक्षणों के साथ अथवा अकेले उनके आधार पर लिखा गया काव्य।' सामान्य भाषा में 'रीति' का अर्थ होता है 'प्रकार'। 'रीति' शब्द का यदि शाब्दिक अर्थ लिया जाय तो इसका अर्थ होगा–'काव्य रचना का ढंग या प्रकार।' किन्तु हिन्दी में यह शब्द बडे व्यापक रूप से गृहीत हुआ है। काव्य रचना संबंधी नियमों की व्याख्या की जाती है तो उसे रीति ग्रंथ की और जब उन नियमों के अनुसार काव्य रचना की जाती है तो उसे रीति काव्य की संज्ञा दी जाती है।

'काव्य रचना का ढंग या प्रकार'

4.3.2 रीतिकाव्य की मूल प्रवृत्तियाँ

रीतिकालीन काव्य के कवियों का मुख्य उद्देश्य रीति कर्म और कवि कर्म को समान महत्व देना रहा है। रीतिकाव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों निम्नलिखित हैं–

4.3.2.1 रीति निरूपण

रीतिकालीन काव्य की मूल प्रवृत्तियों में प्रमुख रीति निरूपण या लक्षण ग्रंथों का निर्माण ही है। उसके साथ-साथ विलासी राजाओं की विलासवृत्ति को तुष्ट करने के लिए इन्होंने श्रृंगार प्रधान रचनाएँ भी लिखी। रीतिकाल के अधिकतर कवि राजाश्रय में रहे थे और आश्रयदातओं के दान, पराक्रम आदि का आलंकारिक वर्णन करने में इन्हें धन प्राप्ति होती थी। धार्मिक संस्कारों के कारण भक्तिपरक रचनाएँ करके वे आत्मलाभ भी प्राप्त करते रहे और जीवन के कटु–तिक्त वैयक्तिक अनुभवों को नीति का जामा पहनाकर नीति कथनों के रूप में भी व्यक्त करते रहे।

आत्मलाभ की प्राप्ति

4.3.2.2 श्रृंगारिकता

रीतिकाल के काव्यों की दूसरी प्रमुख प्रवृत्ति श्रृंगारिकता है। इन कवियों का श्रृंगार वर्णन एक ओर तो शास्त्रीय बन्धनों से युक्त है तो दूसरी ओर विलासी आश्रयदाताओं की प्रवृत्ति ने इसे उस सीमा तक पहुँचा दिया जहाँ यह अश्लीलता का संस्पर्श करने लगा। नायक-नायिका भेद का निरूपण प्रायः इसी के अंतर्गत किया गया है। वस्तुतः इन कवियों को वह दरबारी वातावरण प्राप्त हुआ जिसमें व्यक्ति की दृष्टि विलास के समस्त उपकरणों के संग्रह की ओर ही रहती है। भोग में ही जीवन की सार्थकता समझी गई और नारी को उपभोग की वस्तु मानकर देखा गया। पुरुष की समस्त चेष्टाएँ उसे एक वस्तु के रूप में ही देखती हैं। इस काल के काव्य के श्रृंगार चित्रण में इन्द्रीय सुख की प्रधानता, रूपलिप्सा, भोगेच्छा एवं बाह्य सौंदर्य की प्रधानता दिखाई पडती है।

भोग में ही जीवन की सार्थकता

4.3.2.3 आलंकारिकता

रीतिकालीन काव्य में अलंकरण की प्रधानता है। कविता सुंदरी को अलंकारों से सजाने में वे कवि कर्म की सार्थकता समझते थे। अलंकारों के प्रति इनका मोह अति प्रबल था, अतः वे कविता में अलंकारों का सायस प्रयोग करते थे। कल्पना की ऊँची उडान, चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति एवं पाण्डित्य प्रदर्शन रीतिकालीन काव्य में आलंकारिकता के कारण ही आया है।

यमक, श्लेष, अनुप्रास जैसे शाब्दिक चमत्कार की सृष्टि उसमें पर्याप्त की गई है तो दूसरी ओर उसमें उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति जैसे भाव निरूपक अलंकारों का भी सुंदर प्रयोग हुआ है।

▶ कविता को सजाना कवि कर्म

4.3.2.4 आश्रयदाताओं की प्रशंसा

रीतिकाल के अधिकांश कवि राजदरबारों में आश्रय प्राप्त थे। बिहारी, देव, भूषण, केशव आदि सभी प्रसिद्ध कवि राजदरबारों से वृत्ति प्राप्त करते थे, अतः यह स्वाभाविक था कि वे अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में काव्य रचना करते थे। देव ने अपने आश्रयदाता भवानी सिंह की प्रशंसा में 'भवानी विलास' लिखा तो वीर रस के प्रसिद्ध कवि भूषण ने शिवाजी की प्रशंसा में 'शिव बावनी' एवं छत्रसाल बुन्देल की प्रशंसा में 'छत्रसाल दशक' की रचना की। भूषण जैसे कुछ कवियों को छोड दिया जाए तो रीतिकाल के अधिकांश कवियों द्वारा की गई आश्रयदाताओं की प्रशंसा अतिशयोक्तिपूर्ण है। कविगण आश्रयदाताओं की प्रशंसा में लीन थे।

▶ आश्रयदाताओं की प्रशंसा

4.3.2.5 बहुज्ञता एवं चमत्कार प्रदर्शन

रीतिकालीन कवियों में पाण्डित्य प्रदर्शन की जो प्रवृत्ति परिलक्षित होती है, उसके कारण ये काव्य में विविध विषयक ज्ञान का समावेश करके अपनी बहुज्ञता प्रदर्शित करते थे। बिहारी के काव्य में ज्योतिष, पुराण, आयुर्वेद, गणित, कामशास्त्र, नीति, चित्रकला, आदि अनेक विषयों की जानकारी समाविष्ट है।

▶ पाण्डित्य प्रदर्शन

4.3.2.6 भक्ति एवं नीति

रीतिकाल का कोई भी कवि भक्तिभावना से हीन नहीं है और हो भी नहीं सकता। क्योंकि भक्ति उसके लिए मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी। भौतिक रस की उपासना करते हुए उनके विलास जर्जर मन में इतना नैतिक बल नहीं था कि भक्ति रस में अनास्था प्रकट करें अथवा सैद्धांतिक निषेध कर सकें। रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि बिहारी की कृति– 'बिहरी सतसई' में 70 दोहे भक्तिभावना के हैं। नीति संबंधी उक्तियाँ भी इन कवियों ने पर्याप्त मात्र में लिखी हैं।

▶ भक्ति मनोवेज्ञानिक आवश्यकता रही

4.3.2.7 नारी भावना

रीतिकालीन काव्य का केन्द्रबिन्दु नारी चित्रण रहा है। नायिका के नखशिख वर्णन में उन्होंने अधिक रुचि दिखाई है। नारी के ऐन्द्रिक बाह्य रूप के निरूपण में ही उनकी वृत्ति अधिक रमी है। नारी के कमनीय अंगों का स्थूल एवं मांसल चित्र अंकित करते हुए उन्होंने काव्य रसिकों को उसके मनमोहक स्वरूप से परिचित कराया। उनके समक्ष नारी का एक ही रूप था- विलासिनी प्रेमिका का। नारी के प्रति जो दृष्टिकोण तत्कालीन दरबारी वातावरण एवं परिवेश से अनुप्राणित था।

▶ नारी चित्रण की प्रधानता

4.3.2.8 प्रकृति चित्रण

रीतिकाल में आलंबन रूप में प्रकृति चित्रण प्रायः बहुत कम हुआ है, जबकि आलंकारिक रूप में तथा उद्दीपन रूप में अधिक हुआ है। परंपरागत रूप में षड्ऋतुवर्णन एवं बारहमासा का चित्रण भी उपलब्ध होता है। बिहारी, देव, मतिराम, भिखारीदास आदि कवियों के प्रकृति चित्रण इसी प्रकार के हैं। प्रकृति के अनेक उपमान– कमल, चंद्रमा, चातक, हंस, कोयल, मेघ, पर्वत आदि लेकर इन्होंने नायिका के अंग-प्रत्यंग का सुन्दर चित्रण किया है।

▶ आलंकारिक रूप में प्रकृति चित्रण

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

रीतिकालीन काव्यधारा उन कवियों की है जिन्होंने राजाओं (उनकी पत्नी या प्रेमिकाओं) को शास्त्रीय ज्ञान देने के लिए लक्षण ग्रंथों की रचना की। ये कवि पहले संस्कृत से काव्य लक्षण या सिद्धांत का अनुवाद ब्रज भाषा में करते, उसके बाद उदाहरण के रूप में कविता लिखते थे। इसी काव्यधारा को लक्षण-ग्रंथ परंपरा भी कहा जाता है तथा इनके कविगण आचार्य कहलाते। मध्यकाल में दरबार पर आश्रित कवियों के बड़े हिस्से में रीति या पद्धति से बद्ध काव्य रचने वाले कवि आते हैं। इन्होंने आत्म-प्रदर्शन या काव्य रसिकों को ज्ञान देने के लिए इस तरह के काव्य का सृजन किया। रीतिबद्ध काव्यधारा में केशवदास, चिंतामणि त्रिपाठी, कुलपति मिश्र, देव, भिखारीदास, पद्माकर और मतिराम आदि महत्वपूर्ण कवियों को रखा जा सकता है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. रीति शब्द की व्याख्याओं से परिचित कराइए।
2. रीतिकाव्य के लक्षणों पर टिप्पणी तैयार कीजिए।
3. रीतिकाव्य की मूल प्रवृत्तियों पर आलेख तैयार कीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी भाषा की संरचना - डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी साहित्य का आदिकाल - आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी
3. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
5. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
2. हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. भोलानाथ तिवारी
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

इकाई : 4

रीतिकवियों के वर्ग- रीतिसिद्ध, रीतिबद्ध, रीतिमुक्त

Learning Outcomes / अध्ययन परिणाम

- रीति कालीन कवियों के वर्ग से अवगत होता है
- रीतिसिद्ध कवि से परिचित होता है
- रीतिबद्ध कवि से अवगत होता है
- रीतिमुक्त कवि से परिचित होता है

Background / पृष्ठभूमि

रीतिकालीन साहित्य अनेक अमूल्य रचनाओं का सागर है, इतना समृद्ध साहित्य किसी भी दूसरी भाषा का नहीं है और न ही किसी अन्य भाषा की परंपरा का साहित्य एवं रचनाएँ अविच्छिन्न प्रवाह के रूप में इतने दीर्घ काल तक रहने पाई है। रीतिकाल के कवि और उनकी रचनाएँ, रीतिकाल की रचनाएँ और रचनाकार उनके कालक्रम की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं।

Keywords / मुख्य बिन्दु

श्रृंगारकाव्य, काव्यसंपत्ति, संस्कृत साहित्यशास्त्र, सौंदर्य चित्रण

Discussion / चर्चा

रीतिकाल के कवियों को तीन वर्गों में बांटा जाता है। पहला वर्ग रीतिबद्ध कवियों का है जिसके प्रतिनिधि केशव, चिंतामणि, भिखारीदास, देव, मतिराम और पद्माकर आदि हैं। इन कवियों ने दोहों में रस, अलंकार और नायिका के लक्षण देकर कवित्त सवैए में प्रेम और सौंदर्य की कलापूर्ण मार्मिक व्यंजना की है। दूसरा वर्ग रीतिसिद्ध कवियों का है। इन कवियों की रचना की पृष्ठभूमि में अप्रत्यक्ष रूप से रीति परिपाटी काम कर रही होती है। उनकी रचनाओं को पढने से साफ पता चलता है कि उन्होंने काव्यशास्त्र को पचा रखा है। बिहारी, रसनिधि आदि इस वर्ग में आते हैं। तीसरा वर्ग रीतिमुक्त कवियों का है। रीति परंपरा से मुक्त कवियों को रीति मुक्त कवि कहा जाता है। घनानंद, आलम, ठाकुर, बोधा आदि इस वर्ग में आते हैं।

4.4.1 रीति कवियों के वर्ग

रीतिकाल के कवि राजाओं और रईसों के आश्रय में रहते थे। वहाँ मनोरंजन और कलाविलास का वातावरण स्वाभाविक था। बौद्धिक आनंद का मुख्य साधन वहाँ उक्तिवैचित्र्य समझा जाता था। ऐसे वातावरण में लिखा गया साहित्य अधिकतर श्रृंगारमूलक और कलावैचित्र्य से युक्त था। पर इसी समय प्रेम के स्वच्छंद गायक भी हुए जिन्होंने प्रेम की गहराइयों स्पर्श किया है। मात्रा और काव्यगुण दोनों ही दृष्टियों से इस समय का नर-नारी-प्रेम और सौंदर्य की मार्मिक व्यंजना करनेवाला काव्यसाहित्य महत्वपूर्ण है।

▶ रीतिकालीन काव्य मनोरंजन और कलाविलास के लिए

रीतिकाल में वीरकाव्य भी लिखा गया। मुगल शासक औरंगजेब की कट्टर सांप्रदायिकता और आक्रामक राजनीति की टकराहट से इस काल में जो विक्षोभ की स्थितियाँ आई उन्होंने कुछ कवियों को वीरकाव्य के सृजन की भी प्रेरणा दी। ऐसे कवियों में भूषण प्रमुख हैं जिन्होंने रीतिशैली को अपनाते हुए भी वीरों के पराक्रम का ओजस्वी वर्णन किया। इस समय नीति, वैराग्य और भक्ति से संबंधित काव्य भी लिखा गया। अनेक प्रबंधकाव्य भी निर्मित हुए। इधर के शोधकार्य में इस समय की श्रृंगारेतर रचनाएँ और प्रबंधकाव्य प्रचुर परिमाण में मिल रहे हैं। इसलिए रीतिकालीन काव्य को नितांत एकांगी और एकरूप समझना उचित नहीं है। इस समय के काव्य में पूर्ववर्ती कालों की सभी प्रवृत्तियाँ सक्रिय हैं। यह प्रधान धारा श्रृंगारकाव्य की है जो इस समय की काव्यसंपत्ति का वास्तविक निदर्शक मानी जाती रही है।

▶ वीरकाव्य का भी प्रचुरता

श्रृंगारी काव्य तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है। पहला वर्ग रीतिबद्ध कवियों का है जिसके प्रतिनिधि केशव, चिंतामणि, भिखारीदास, देव, मतिराम और पद्माकर आदि हैं। इन कवियों ने दोहों में रस, अलंकार और नायिका के लक्षण देकर कवित्त सवैए में प्रेम और सौंदर्य की कलापूर्ण मार्मिक व्यंजना की है। संस्कृत साहित्यशास्त्र में निरूपित शास्त्रीय चर्चा का अनुसरण मात्र इनमें अधिक है। पर कुछ ने थोड़ी मौलिकता भी दिखाई है, जैसे भिखारीदास का हिन्दी छंदों का निरूपण। दूसरा वर्ग रीतिसिद्ध कवियों का है। इन कवियों ने लक्षण नहीं निरूपित किए, केवल उनके आधार पर काव्यरचना की। बिहारी इनमें सर्वश्रेष्ठ हैं, जिन्होंने दोहों में अपनी 'सतसई' प्रस्तुत की। विभिन्न मुद्राओंवाले अत्यंत व्यंजक सौंदर्यचित्रों और प्रेम की भावदशाओं का अनुपम अंकन इनके काव्य में मिलता है। तीसरे वर्ग में घनानंद, बोधा, द्विजदेव ठाकुर आदि रीतिमुक्त कवि आते हैं जिन्होंने स्वच्छंद प्रेम की अभिव्यक्ति की है। इनकी रचनाओं में प्रेम की तीव्रता और गहनता की अत्यंत प्रभावशाली व्यंजना हुई है।

▶ रीतिकाव्य तीन भागों में विभाजित

4.4.2 रीतिसिद्ध कवि

रीतिसिद्ध उन कवियों को कहा गया, जिनका काव्य, काव्य के शास्त्रीय ज्ञान से तो आबद्ध था, लेकिन वे लक्षणों के चक्कर में नहीं पड़े। अर्थात् जिन कवियों ने लक्षण और उदाहरण शैली पर काव्य सृजन तो नहीं किया परंतु रचना करते समय उनका झुकाव लक्षण ग्रंथों पर अवश्य रहा, उन्हें रीतिसिद्ध की श्रेणी में रखा गया है। रीतिसिद्ध कवियों में सर्वप्रथम जिस कवि का नाम लिया जाता है, वह है- बिहारी।

4.4.2.1 बिहारीलाल

बिहारीलाल रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं जिनका जन्म 1595 ई में ग्वालियर में हुआ था। बिहारी के एकमात्र ग्रंथ का नाम 'बिहारी सतसई' है जिसकी रचना सन् 1662 ई. में संपन्न हुई। बिहारी ने यद्यपि कोई लक्षण ग्रंथ नहीं लिखा तथापि उन्हें रीतिशास्त्र की अच्छी जानकारी थी

▶ रीतिशास्त्र की अच्छी जानकारी

जिसका उपयोग उन्होंने अपनी सतसई में किया है। बिहारी का देहावसान 1663 ई. में हुआ।

बिहारी की ख्याति का मूल आधार उनका अन्यतम ग्रंथ 'बिहारी सतसई' है जिसमें कुल मिलाकर 713 दोहे हैं। इस ग्रंथ का निर्माण 'गाथा सप्तशती', 'अमरूक शतक', 'आर्या सप्तशती' की प्रेरणा से हुआ है। बिहारी जयपुर के मिर्जा राजा जयसिंह के दरबारी कवि थे। कहा जाता है कि जिस समय बिहारी जयपुर में पहुँचे उस समय महाराज जयसिंह अपनी छोटी रानी के प्रेम में इतने आसक्त थे कि राजकाज भूलकर महल से बाहर तक न निकलते थे। तब बिहारी ने यह दोहा लिखकर उनके पास भिजवा दियाः–

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहि काल।
अली कली ही सौं विंध्यौ आगे कौन हवाल।।

▶ जयपुर के मिर्जा राज जयसिंह के दरबारी कवि

दोहे में निहित व्यंग्यार्थ को समझकर राजा जयसिंह तुरन्त बाहर निकल आए और राजकाज में संलग्न हो गए। तब से बिहारी का मान बहुत बढ़ गया। राजा ने उन्हें ऐसे ही सरस दोहे बनाने का निर्देश दिया तथा प्रत्येक दोहे के बदले उन्हें एक अशर्फी (स्वर्ण मुद्रा) दी जाने लगी।

'बिहारी सतसई' मूलतः श्रृंगार रस से ओतप्रोत मुक्तक काव्य है जिसका प्रत्येक दोहा हिन्दी साहित्य का एक–एक रत्न माना जाता है। बिहारी सतसई की पचासों टीकाएं लिखी गईं जिनमें से चार–पांच टीकाएं अति प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त 'बिहारी' नामक ग्रंथ में पंडित अंबिकादत्त व्यास ने बिहारी के दोहों का भाव पल्लवन रोला छन्द में किया है। पण्डित परमानन्द ने 'श्रृंगार सप्तशती' नाम से बिहारी के दोहों का अनुवाद संस्कृत में किया है। बिहारी के संबंध में कहा जाता है कि उन्होंने 'गागर में सागर भर दिया है'। अर्थात कम शब्दों में अधिक भाव व्यक्त कर सकने की क्षमता को 'गागर में सागर भरना' कहा जाता है।

▶ 'बिहारी सतसई' मूलतः मुक्तक काव्य

बिहारी दूरारूढ़ कल्पना के कवि माने जाते हैं। शुक्लजी के अनुसार बिहारी की कृति का जो मूल्य आंका गया है, उसका कारण उनका शिल्प विधान एवं शब्दों की कारीगरी है। किन्तु जो लोग भाव की स्वच्छ निर्मल धारा में कुछ देर मग्न होना चाहते हैं, उनका संतोष बिहारी से नहीं हो सकता। बिहारी का ब्रजभाषा पर असाधारण अधिकार था। शब्द और वर्ण उनके दोहों में नगों की भांति जडे हैं।

4.4.3 रीतिबद्ध कवि

▶ आचार्य कवि

रीतिबद्ध रचनाएँ लक्षणों और उदाहरणों से युक्त होती है। इस काव्यधारा के कवियों को रीतिकार या आचार्य कवि मानते हैं। इन कवियों का प्रमुख उद्देश्य या तो काव्य की शिक्षा देना है या किसी काव्यशास्त्रीय विषय का सोदाहरण प्रतिपादन करना। अतः रीतिबद्ध कवि वे हैं, जिन्होंने रीतिग्रंथों का प्रणयन किया।

4.4.3.1 केशवदास

▶ रीतिकाल का प्रथम कवि

काल विभाजन के अनुसार केशवदास भक्तिकाल के अंतर्गत आते हैं, परंतु काव्य रचना की प्रमुख प्रवृत्ति के आधार पर उन्हें रीतिकाल का प्रथम कवि मानना ही अधिक उपर्युक्त है। उनकी 'रामचन्द्रिका' में राम का वर्णन होते हुए भी वह एक प्रकार से अलंकारों और छंदों का बृहद कोश सी बन गई है। केशवदास का जन्म संवत् 1612 में सनाढ्य कुल के पं. काशीनाथ मिश्र के यहाँ हुआ था। इनके सभी पूर्वज संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान हुए थे। इनके लिखे हुए सात ग्रंथ प्रसिद्ध हैं- विज्ञान गीता, रतन–बावनी, जहाँगीर–जस चन्द्रिका, वीरसिंह देव चरित्र,

रसिकप्रिया, कविप्रिया, रामचन्द्रिका।

इनमें से रसिकप्रिया में रस निरूपण, विशेषकर श्रृंगार रस और नायिका भेद का निरूपण हुआ है। 'कविप्रिया' में काव्य के विभिन्न वर्ण्य विषय के साथ ही अलंकारों का विस्तृत वर्णन हुआ है। यह एक प्रकार से काव्य शिक्षा का ग्रंथ है। 'विज्ञानगीता' आध्यात्मिक ग्रंथ है। केशवदास ओरछा नरेश महारा जयसिंह के भाई इन्द्रजीत सिंह के आश्रय में रहते थे। केशव को अलंकारवादी इसलिए काह जाता है क्योंकि वे अलंकारहीन कविता को सुन्दर ही नहीं मानते हैं। अलंकार ही काव्य के बारे में वे लिखते हैं-

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त
भूषन बिन्दु न विराजई कविता बनिता मित्त।।

केशवदास के दो रूप मिलते हैं कवि और आचार्य का। आचार्य के रूप में उन्होंने काव्यांगों का विवेचन किया है और कवि के रूप में 'रामचन्द्रिका' आदि ग्रंथ लिखे हैं। वे अलंकारों के बहुत प्रेमी थे, उनकी दृष्टि में अलंकारहीन कविता का कोई महत्व नहीं है। साथ ही उनका काव्य इतना क्लिष्ट बन गया है कि कुछ आलोचकों ने उन्हें 'कठिन काव्य का प्रेत' तक कहा। रसों के क्षेत्र में उन्होंने सभी श्रेष्ठ रसों का सुंदर चित्रण किया है। परंतु श्रृंगार पर विशेष बल दिया है। भाषा संस्कृत गर्भित ब्रजभाषा है, जिसमें बुन्देलखण्डी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।

▶ 'कठिन काव्य का प्रेत' केशवदास

कवि को देन न चहैं विदाई, पूछैं केशव की कविताई

4.4.3.2 चिन्तामणी त्रिपाठी

लक्षण ग्रंथ लिखने वाले कवियों में केशव के उपरांत चिन्तामणी का नाम आता है। आचार्य शुक्ल ने उन्हें रीतिकाल का प्रवर्तक माना है। भूषण और मतिराम इनके भाई थे। इनका जन्म संवत् 1660 में कानुपर के तिकवाँपुर नामक गाँव के रत्नाकर त्रिपाठी के यहाँ हुआ था। इनके लिखे हुए तीन ग्रंथ मिलते हैं- 'काव्य विवेक', 'कविकुल कल्पतरू', 'काव्य प्रकाश'। 'छन्द विचार' नामक एक पिंगल ग्रंथ भी इन्हीं का लिखा हुआ माना जाता है। ये नागपुर के सूर्यवंशी भोंसला नरेश मकरन्दशाह के आश्रित कवि थे।

▶ लक्षण ग्रंथों के कवि

चिंतामणी ने रीतिनिरूपण को अत्यंत गंभीरता एवं निष्ठा के साथ ग्रहण किया है। इनके विवेचन की विशेषता इस बात में निहित है कि लक्षण देने से पूर्व से ये सभी आधार ग्रंथों में दिये गये लक्षणों को तोल कर देखते हैं और उनमें जो इन्हें ठीक जंचता है, उसे ग्रहण कर लेते हैं। इन्होंने संस्कृत के 'चन्द्रलोक' और 'कुवलयानन्द' नामक ग्रंथों को आधार बना काव्यशास्त्र का विवेचन किया जिसमें रस को प्रधानता दी। परवर्ती कवियों ने इन्हीं की पद्धति का अनुसरण किया था। इन्होंने अत्यंत सरल रूप में काव्यशास्त्र की व्याख्या की थी। हिन्दी के लक्षणकारों में इनसे बढकर सुगम स्पष्ट और स्मरणीय लक्षण देनेवाला और दूसरा कोई आचार्य उस युग में नहीं हुआ।

▶ रीतिनिरूपण को महत्व देना

4.4.3.3 मतिराम

ये चिन्तामणि और भूषण के भाई कहे जाते हैं। इनका जन्म तिकवाँपुर में सं. 1674 के आसपास हुआ था। ये बहुत समय तक बूँदी के महाराज के आश्रित रहे थे। मिश्रबंधुओं ने इन्हें हिन्दी के 'नवरत्नों' में स्थान दिया है। इनकी ख्याति प्रधानतः इनके 'ललितललाम' और 'रसराज' नामक ग्रंथों पर आधारित है। 'रसराज' इनका सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। 'ललितललाम'

अलंकार ग्रंथ है। इनकी रचित 'मतिराम सतसई' के सात सौ दोहे श्रृंगार रस के उत्कृष्ट नमूने माने जाते हैं। फिर भी इनमें बिहारी की भाँति सुन्दर अलंकार योजना उतने निपुण नहीं, जितने अपनी अभिव्यक्ति की सरलता और स्वाभविकता में हैं। इनके अलंकार आडंबर मात्र न होकर रस के सहायक और परिपोषक भी हैं। इनकी भाषा सुव्यवस्थित, परिपक्व, प्रवाहपूर्ण और प्रसाद गुण युक्त है। इनके कवित्त-सवैयों में भारतीय जीवन के मर्मस्पर्शी चित्रों की प्रतिष्ठा के साथ ही ध्वनि का सौंदर्य भी साकार हो उठा है।

- ▶ मिश्रबंधुओं ने इन्हें हिन्दी के 'नवरत्नों' में स्थान दिया

4.4.3.4 सेनापति

सेनापति को कुछ आलोचक रीतिकाल का कवि मानते हैं और कुछ भक्तिकाल का। इनका जन्म संवत् 1646 के लगभग हुआ माना जाता है। इस प्रकार सेनापति का आविर्भाव एक प्रकार से भक्ति और रीतिकाल के सन्धियुग में हुआ था। इसलिए इन पर इन दोनों कालों का प्रभाव है। इनके एक कवित्त से यह ध्वनि निकलती है कि ये अपने अरंभिक दिनों में किसी मुसलमानी दरबार में रहते थे, परन्तु बाद में इन्हें उस दरबारी वातावरण से विरक्ति हो गई थी। इनके द्वारा लिखे गए दो ग्रंथ बताये जाते हैं- 'कवित्त रत्नाकर' और 'काव्य कल्पद्रुम'।

- ▶ दरबारी वातावरण से विरक्त

4.4.3.5 देव

रीतिकाल के लक्षणकारों में देव का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। इनके ग्रंथों में विचारों की स्पष्टता, वर्गीकरण की मौलिकता तथा उदाहरणों की रमणीयता द्रष्टव्य है। देव का जन्म संवत् 1730 में इटावा के एक सनाढ्य परिवार में हुआ था। अपने मनोनुकूल आश्रयदाता न मिलने के कारण ये विभिन्न राज-दरबारों में भटकते फिर थे। पर्यटन से इनका ज्ञान व्यापक और विस्तृत हो गया था। 16 वर्ष की अवस्था में ही इन्होंने 'भावविलास' नामक रीति ग्रंथ रच डाला था।

- ▶ पर्यटन से इनका ज्ञान व्यापक और विस्तृत

4.4.4 रीतिमुक्त कवि

'रीति मुक्त कवियों का सीधा संबंध उन काव्यधारा से है जो रीति परंपरा के साहित्यिक बंधनों और रूढियों से मुक्त है। रीतिमुक्त कवियों के काव्य में कल्पना और असाधारणता का प्राचुर्य रहता है। इनमें भावप्रधान अधिक और रूपप्रधान कम होता है। इन कवियों की प्रवृत्ति अपने हृदय की पर्त खोलने की अधिक होती है, अपनी उक्ति को सजाने सवारने में कम होती है। रीतिमुक्त काव्यधारा के विकास में घनानन्द, आलम, ठाकुर, बोधा और द्विजदेव का योगदान मुख्य रूप से उल्लेखनीय है।

- ▶ भावप्रधान अधिक और रूपप्रधान कम

4.4.4.1 घनानन्द

घनानन्द रीतिमुक्त धारा के श्रृंगारी कवि हैं। इनका जन्म 1689 ई. और मृत्यु नादिरशाह के आक्रमण के समय 1739 ई. में हुई। ये दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के यहां मीर मुंशी थे और जाति के कायस्थ थे। ये 'सुजान' नामक वेश्या से प्रेम करते थे। एक दिन दरबार के कुचक्रियों ने बादशाह से कहा कि मीर मुंशी साहब गाते बहुत अच्छा हैं। जब बादशाह ने इन्हें गाना सुनाने को कहा तो ये टालमटोल करने लगे। तब लोगों ने कहा कि ये इस तरह न गाएंगे, यदि इनकी प्रेमिका 'सुजान' कहे तब गाएंगे। वेश्या सुजान बुलाई गई और तब घनानन्द ने उसकी ओर मुंह करके और बादशाह की ओर पीठ करके गाना सुनाया। बादशाह इनके गाने पर तो प्रसन्न हुआ किंतु इनकी बेअदबी पर इतना नाराज हुआ कि उसने इन्हें शहर में से बाहर निकल जाने का हुक्म दे दिया। जब इन्होंने सुजान से अपने साथ चलने को कहा तो उसने इनकार कर दिया। इस पर इन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया और ये वृन्दावन आकर निम्बार्क संप्रदाय के वैष्णव हो गए। नादिरशाह के आक्रमण के समय हुए कत्लेआम में ये मारे

रीतिमुक्त धारा के श्रृंगारी कवि

गए। लोगों ने नादिरशाह के सैनिकों से कहा कि वृन्दावन में बादशाह का मीर मुंशी रहता है उसके पास बहुत सा माल होगा।

'सुजान' शब्द का बारंबार प्रयोग

घनानन्द की कविता में 'सुजान' शब्द का बारंबार प्रयोग हुआ है जो कहीं तो कृष्णवादी है तो कहीं 'सुजान' नामक उस वेश्या के लिए है जो इनकी प्रेयसी थी। घनानन्द के लिखे पांच ग्रंथों का पता चलता हैः– सुजान सागर, बिरहलीला, लोकसार, रसकेलिवल्ली और कृपाकाण्ड। इसके अतिरिक्त इनके कवित्त और सवैयों के फुटकर संग्रह भी मिलते है जिनमें 150 से लेकर 400 तक छन्द संकलित हैं। घनानन्द के बारे में अन्य उल्लेखनीय तथ्य है कि वे प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबांदानी का ऐसा दावा रखनेवाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ। भाषा पर जैसा अचूक अधिकार घनानन्द का था वैसा और किसी कवि का नहीं। घनानन्द उन विरले कवियों में हैं जो भाषा की लाक्षणिक पदावली की शक्ति से परिचित हैं।

लाक्षणिक भाषा का प्रयोग

घनानन्द के काव्य की एक विशेषता भावजन्य वक्रता है। कवि के भाव असाधरण हैं, उन्हें अभिव्यक्त करने के लिए असाधारण भाषा का प्रयोग ही एकमात्र उपाय है। ऐसा लगता है कि भावों का जन्म ही इस प्रकार की वक्र भाषा में हुआ है। इस प्रकार लाक्षणिक भाषा का प्रयोग करना उनकी शैली है, जिसके परिणामस्वरूप उसमें विरोध और वक्रता, ये दो गुण आ गये हैं। घनानन्द की शैली का सर्वाधिक उल्लेखनीय गुण भाषा का लाक्षणिक प्रयोग है। भावों की जो सूक्ष्म अंतर्दशाएं कवि की अनुभूत हैं और रूप आदि के विषय में विलक्षण चिंतन उसे प्राप्त है, उसकी अभिव्यक्ति साहित्य में प्रचलित भाषा से नहीं हो सकती थी। इसलिए घनानन्द ने लक्षणा का मार्ग अपनाया।

4.4.4.2 आलम

तीन प्रबंधकाव्य और एक मुक्तक संग्रह

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में दो आलम माने हैं, एक अकबर के समसामयिक और दूसरे औरंग़जेब के पुत्र मआज्जम के आश्रित। प्रेमा-ख्यानक प्रबंधकाव्य 'माधवनल–कामकंदला' को उन्होंने पहले आलम की रचना माना है और 'आलमकेलि' को दूसरे आलम की रचना स्थिर किया है। अब 'स्याम–सनेही' और 'सुदामाचरित' दो रचनाएं और प्रकाश में आ गयी हैं। इस प्रकार 'माधवनल–कामकंदला', 'स्याम–सनेही' और 'सुदामाचरित' तीन प्रबंधकाव्य और एक मुक्तक संग्रह 'आलमकेली' आलम के नाम से प्राप्त हैं।

भावप्रधान काव्य

आलम घनानन्द की भांति सर्वथा स्वच्छंद नहीं है। इनके कवित्त–सवैयों में रीति–परंपरा के गुण भी कुछ–कुछ मिल जाते हैं, अथार्त् कहीं–कहीं उन्हें नायिकाभेद, रस आदि के आधार पर खतियाया भी गया है। घनानन्द जिस प्रकार अपनी अनुभूति की स्वच्छंदता और असाधारणता के प्रति जागरूक हैं, उस प्रकार आलम नहीं है। इनका काव्य स्थूल वस्तुप्रधान नहीं है, भावप्रधान है। संयोग हो या वियोग कवि विषादमग्न रहता है।

4.4.4.3 ठाकुर

ठाकुर का साहित्य मात्रा में अधिक नहीं है। उनके दो संग्रह उपलब्ध हैं– 'ठाकुर ठसक' और 'ठाकुर शतक', जिनमें से 'शतक' के कुछ पद्य 'ठसक' में भी आ गये हैं। वैसे अपने काव्य मार्ग की विशेषताओं के प्रति घनानन्द की भांति ठाकुर भी सजग हैं। केवल कवि–शिक्षा के बल पर काव्यरचना का उन्होंने उपहास किया है। ऐसे काव्य में जो कृत्रिमता रहती है, ठाकुर का काव्य उससे मुक्त है। अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों में ये सहज स्वाभाविक है। इनके

▶ बोलचाल की भाषा

भाव व्यक्तिगत हो कर भी सार्वजनीन हैं। उनकी भाषा भी बोलचाल की, चलती और स्वच्छ है। उनमें प्रवाह तो है पर अलंकार आदि का लदाव नहीं है।

▶ भक्तिभावना का भी प्रयोग

ठाकुर के काव्य में भक्ति भावना भी मिलती है। उसके अंतर्गत उन्होंने लीलावर्णन नहीं किया है, अपितु उनकी परमेश्वर संबंधी धारणा ऐसी सर्वसाधारण है, जो राम, कृष्ण आदि की सीमाओं से परे एक अप्रत्यक्ष शक्ति के रूप में लोकमानस में बैठी रहती है। सर्वसाधारण के मन में ईश्वर की विलक्षण महिमा का ही विश्वास रहता है, ठाकुर इसी के कवि हैं। उन्होंने लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग कर एक नया मार्ग को अपनाया है। मुहावरों की तुलना में उनके काव्य में लोकोक्तियां अधिक है। ठाकुर की इस विशेषता को समकालीन काव्यप्रवृत्ति से प्रस्थान भेद ही माना जायेगा।

Summarised Overview / संक्षिप्त अवलोकन

श्रृंगारिकता, नायिकाभेद और अलंकार-प्रियता रीतिकालीन साहित्य का प्रमुख लक्षण हैं। प्रायः रीतिकाल के सभी कवियों ने ब्रज-भाषा को अपनाया है। स्वतंत्र कविता कम लिखी गई, रस, अलंकार वगैरह काव्यांगों के लक्षण लिखते समय उदाहरण के रूप में - विशेषकर श्रृंगार के आलंबनों एवं उद्दीपनों के उदाहरण के रूप में - सरस रचनाएँ इस युग में लिखी गईं। भूषण कवि ने वीर रस की रचनाएँ भी दीं। भाव-पक्ष की अपेक्षा कला-पक्ष अधिक समृद्ध रहा। शब्द-शक्ति पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया, न नाटयशास्त्र का विवेचन किया गया। विषयों का संकोच हो गया और मौलिकता का ह्रास होने लगा। इस समय अनेक कवि हुए- केशव, चिंतामणि, देव, बिहारी, मतिराम, भूषण, घनानंद, पद्माकर आदि। इनमें से केशव, बिहारी और भूषण को इस युग का प्रतिनिधि कवि माना जा सकता है। बिहारी ने दोहों की संभावनाओं को पूर्ण रूप से विकसित कर दिया। आपको रीति-काल का प्रतिनिधि कवि माना जा सकता है। इस काल के कवियों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है- रीतिबद्ध कवि, रीतिमुक्त कवि और रीतिसिद्ध कवि विद्वानों का यह भी मत है कि इस काल के कवियों ने काव्य में मर्यादा का पूर्ण पालन किया है। घोर श्रृंगारी कविता होने पर भी कहीं भी मर्यादा का उल्लंघन देखने को नहीं मिलता है।

Assignment / प्रदत्त कार्य

1. रीति कालीन कवियों के वर्ग का परिचय दीजिए।
2. रीतिसिद्ध कवियों का परिचय दीजिए।
3. रीतिबद्ध कवियों से परिचय कराइए।
4. रीतिमुक्त कवियों का वर्णन कीजिए।

Suggested Reading / निर्धारित पुस्तक

1. हिन्दी भाषा की संरचना - डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी साहित्य का आदिकाल - आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी
3. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
5. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा

Reference / संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
2. हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ. भोलानाथ तिवारी
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचंद्र शुक्ल

Space for Learner Engagement for Objective Questions

Learners are encouraged to develop objective questions based on the content in the paragraph as a sign of their comprehension of the content. The Learners may reflect on the recap bullets and relate their understanding with the narrative in order to frame objective questions from the given text. The University expects that 1 - 2 questions are developed for each paragraph. The space given below can be used for listing the questions.

സർവ്വകലാശാലാഗീതം

വിദ്യയാൽ സ്വതന്ത്രരാകണം
വിശ്വപൗരരായി മാറണം
ഗ്രഹപ്രസാദമായ് വിളങ്ങണം
ഗുരുപ്രകാശമേ നയിക്കണേ

കൂരിരുട്ടിൽ നിന്നു ഞങ്ങളെ
സൂര്യവീഥിയിൽ തെളിക്കണം
സ്നേഹദീപ്തിയായ് വിളങ്ങണം
നീതിവൈജയന്തി പാറണം

ശാസ്ത്രവ്യാപ്തിയെന്നുമേകണം
ജാതിഭേദമാകെ മാറണം
ബോധരശ്മിയിൽ തിളങ്ങുവാൻ
ജ്ഞാനകേന്ദ്രമേ ജ്വലിക്കണേ

കുരീപ്പുഴ ശ്രീകുമാർ

SREENARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

Regional Centres

Kozhikode
Govt. Arts and Science College
Meenchantha, Kozhikode,
Kerala, Pin: 673002
Ph: 04952920228
email: rckdirector@sgou.ac.in

Thalassery
Govt. Brennen College
Dharmadam, Thalassery,
Kannur, Pin: 670106
Ph: 04902990494
email: rctdirector@sgou.ac.in

Tripunithura
Govt. College
Tripunithura, Ernakulam,
Kerala, Pin: 682301
Ph: 04842927436
email: rcedirector@sgou.ac.in

Pattambi
Sree Neelakanta Govt. Sanskrit College
Pattambi, Palakkad,
Kerala, Pin: 679303
Ph: 04662912009
email: rcpdirector@sgou.ac.in

हिन्दी साहित्य का इतिहासः आदिकाल से रीतिकाल तक

COURSE CODE: M23HD01DC

വിദ്യകൊണ്ട് സ്വതന്ത്രരാവുക

SREENARAYANAGURU
OPEN UNIVERSITY

YouTube

ISBN 978-81-966843-3-4

Sreenarayanaguru Open University
Kollam, Kerala Pin- 691601, email: info@sgou.ac.in, www.sgou.ac.in Ph: +91 474 2966841